THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

भगवान महावीर

और

उनकी अहिंसा

"अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा, जान-बूझ कर तथा असावधानी से भी, किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना और इसी भावना के अनुरूप अपने नित्य कर्म बहुत सावधानीपूर्वक करना ही अहिंसा है।"

प्रकाशक

प्रेम रेडियो एण्ड इलेक्ट्रिक मार्ट

महालक्ष्मी मार्केट, भागीरथ पैलेस,

चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६

तृतीय सस्करण
महावीर जयन्ती, १९७४

मूल्य · अध्ययन, मनन व आचरण

मुद्रक : नया हिन्दुस्तान प्रेस, चादनी चौक, दिल्ली-११०००६

दो शब्द

आज दिन प्रतिदिन मासाहार का प्रचलन बढता जा रहा है। इसके कई कारण हैं।

आज के नवयुवक मासाहार को आधुनिकता तथा प्रगतिवादी होने का चिन्ह समझते है, इसलिये वे बहुत तेजी से मासाहार की ओर बढ रहे हैं।

मासाहार देश, विदेश मे सभी स्थानो पर सहज ही मे उपलब्ध हो जाता है। घर से बाहर निकलकर एक शाकाहारी व्यक्ति, शुद्ध व पवित्र शाकाहार सुलभ न होने के कारण, कदाचित भूखा भी रह जाये, परन्तु मासाहारी व्यक्ति को कभी कोई कठिनाई नही होती।

हमारे शासको की ओर से भी, अन्न की कमी का कारण बताकर, मासाहार को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है, इसके लिये प्रचार किया जा रहा है तथा मास का उत्पादन बढाने के लिये करोड़ो रुपया व्यय किया जा रहा है।

"सम्बन्धित अधिकारियो को खिलाने-पिलाने से काम निकाला जा सकता है," "क्लबो व होटलो मे जाने-आने से नये-नये मित्र बनाये जा सकते हैं तथा अपने व्यापार मे उन्नति की जा सकती है," ऐसे विचारो ने भी मासाहार को प्रोत्साहन दिया है।

"मासाहार शक्तिवर्द्धक व सुस्वादु है" यह तथा ऐसी

ही कई अन्य भ्रान्तियां भी मासाहार के पक्ष में फैली हुई हैं।

इन सबको दृष्टि में रखते हुए बहुत दिनो से हृदय में यह भावना थी कि एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की जाये, जिसमे मासाहार के विरुद्ध वैज्ञानिक व तर्कसम्मत विवेचन हो, क्योकि आज के नवयुवकों पर धर्म की अपेक्षा विज्ञान व तर्क के आधार पर कही हुई बात का अधिक प्रभाव पडता है। इन्हीं तथ्यो को दृष्टि मे रखकर यह छोटा सा प्रयास किया है।

मासाहार और हिंसा का चोली दामन का सा साथ है, इसलिये इस पुस्तक में हिंसा व अहिंसा की विवेचना भी की गई है।

पिछले २,५०० वर्षों की अवधि में भगवान महावीर अहिंसा के सबसे बडे पालक व प्रचारक हुए हैं, अत भगवान महावीर के सम्बन्ध में भी सक्षेप में कुछ लिखा गया है जिसके बिना यह पुस्तक अपूर्ण ही रहती।

मैं कोई साहित्यिक विद्वान अथवा सिद्धहस्त लेखक नही हूं, इसलिये यह कोई साहित्यिक कृति नही है। जैसा मैंने देखा, समझा और ठीक जाना है, उसी को अपनी भाषा मे लिख दिया है। कह नहीं सकता कि मेरा यह प्रयास कहा तक सफल होगा? फिर भी यदि थोडे से नवयुवकों के भी मासाहार व हिंसा के सम्बन्ध मे उनके विचार परिवर्तन करने मे यह पुस्तक सहायक हुई तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूगा।

—लेखक

भगवान महावीर के २,५००वें निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर "भगवान महावीर और उनकी अहिंसा" का तीसरा सस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष है। जैन व अजैन पाठको तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा पिछले दो सस्करणों का पर्याप्त स्वागत हुआ था। पाठको के इस उत्साह-पूर्ण स्वागत के कारण ही यह तीसरा सस्करण प्रस्तुत करना सम्भव हुआ है। इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से यत्र-तत्र कुछ प्रसग बढाये गये हैं। आशा है कि इस पुस्तक से जनसाधारण को भगवान महावीर के सिद्धान्तो को समझने तथा उनकी शिक्षाओ व उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा धर्म का पालन करने की प्रेरणा मिलेगी।

—प्रकाशक

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुण लब्धये ॥

जो मोक्ष मार्ग के नेता है, (जो स्वय मोक्ष मार्ग पर चलकर मुक्त हुए और ससार के समस्त प्राणियो को भी वह मुक्ति का मार्ग दिखला गये),

जो कर्म रूपी पर्वतो का भेदन करने वाले हैं (जिन्होने अपने समस्त कर्म नष्ट कर दिये हैं),

जो विश्व के समस्त तत्त्वो को जानते हैं (जो ससार के जड व चेतन समस्त पदार्थों की भूत, वर्तमान व भविष्य तीनो कालो की समस्त अवस्थाओ को जानते है),

उनको मैं उन गुणो की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हू । (मैं उनको इसलिये नमस्कार करता हू कि उन गुणो को प्राप्त कर मैं भी मोक्ष प्राप्त कर सकू) ।

*

जिनने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया;
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उनको स्वाधीन कहो;
भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उन्हीं में लीन रहो ।

अहिंसा के अग्रदूत भगवान महावीर

भगवान महावीर का जन्म लगभग ६०० वर्ष ईसवी पूर्व बिहार प्रदेश में हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था और वे ज्ञातृवश के क्षत्रिय तथा कुण्डपुर के राजा थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था और वे वैशाली के राजा चेटक की सुपुत्री थीं।*

भगवान महावीर बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और चतुर थे। बाल्यकाल मे भी उनका मन बाल -सुलभ मनोरजनो में नही लगता था। उनका अधिकतर समय विद्याध्ययन, चितन और मनन मे ही व्यतीत होता था। कुमार-अवस्था को पार कर युवावस्था मे प्रवेश करने पर भी उनका मन सांसारिक सुखो की ओर नही गया। ससार के प्राणियों को दुखी देखकर उनका मन व्याकुल रहता था और वे ससार के दुखो के कारण और उनको दूर करने के उपाय खोजने के प्रयत्नो मे लगे रहते थे। अपना सारा समय इन्ही प्रयत्नो मे लगाने के लिये उन्होने घर बार छोडकर साधु जीवन

* पुरानी परम्परा के अनुसार भगवान महावीर का जन्म स्थान राजगृह नगर से कुछ मील दूर कुण्डलपुर माना जाता था। परन्तु नई खोजो के अनुसार भगवान महावीर का जन्म स्थान मुजफ्फरपुर जिले मे वैशाली के पास कुण्डपुर (जिसको आजकल बासुकुण्ड कहते हैं) माना जाता है। वहा के निवासी इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं तथा उस भूमि पर खेती भी नही करते।

व्यतीत करने का निश्चय किया। माता की ममता और पिता का प्यार भी उनको अपने मार्ग से विचलित नही कर सके। अन्तत तीस वर्ष की भरी जवानी मे वे घर बार छोडकर साधु जीवन व्यतीत करने लगे। उनका अधिकाश समय इसी बात के चिंतन मे व्यतीत होता था कि ससार के दुखो का कारण क्या है? और इन दुखो को दूर कर, अनन्त व सच्चा सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है? अपने साधना-काल मे ही उन्हे इस बात का दृढ निश्चय और विश्वास हो गया था कि जब तक स्थायी सुख और शान्ति के लिये प्रयत्न नही किया जायेगा तब तक सच्चा सुख नही मिल सकता। वे बारह वर्ष तक घोर तपस्या और चिंतन व मनन करते रहे। परिणामत बयालीस वर्ष की अवस्था मे उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त वे ससार के प्राणियो को बतलाने लगे कि उनके दुखों का कारण क्या है, और उन कारणो को दूर कर सच्चा, निर्बाध व अनन्त सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इस प्रकार तीस वर्ष तक वे ससार को ज्ञान-दान करते रहे। बहत्तर वर्ष की आयु मे उनको इस ससार से मुक्ति प्राप्त हुई।

सन् १९७४ की दीपावली को भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त किये हुए २५०० वर्ष हो जायेंगे। इस उपलक्ष मे उनका २५००वा निर्वाण महोत्सव देश के कोने-कोने मे विशाल स्तर पर मनाया जायेगा। हम सब का भी यह परम पुनीत कर्तव्य है कि हम भी इस निर्वाण महोत्सव को सफल बनाने मे अपना अधिक-से-अधिक योगदान कर भगवान महावीर के चरण कमलो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें।

भगवान महावीर के मुख्य सिद्धान्त

हमारे दु:खों के मूल कारण तथा उनको दूर करने के उपाय

भगवान महावीर ने देखा कि ससार का प्रत्येक जीव दु:खी है, कोई किसी एक कारण से, तो कोई किसी दूसरे कारण से। जब उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया तब उन्होने बतलाया कि ससार के जीवो के दु:खो का मूल कारण इन जीवो का अनादि काल से चला आ रहा उनका अपना अज्ञान ही है। अपनी इस अज्ञानता के कारण, प्रत्येक जीव विभिन्न जन्मों मे उसको जो भी शरीर मिलता रहा है, उसी को अपना सब कुछ मानता रहा है। इसी अज्ञानता के कारण यह जीव इस शरीर के सुख को वास्तविक सुख और इस शरीर के दु:ख को वास्तविक दु:ख मानता रहा है। जो भी अन्य जीव उसको शारीरिक सुख प्राप्त कराने मे सहायक होता है, यह जीव उसको ही अपने सुख का कारण मानकर उसको अपना मित्र–अपना हितैषी–मानता रहा है, और उससे राग–प्रीति–करता रहा है तथा जो भी अन्य जीव उसको शारीरिक सुख प्राप्त करने मे बाधक होता है और उसको शारीरिक दु:ख देता है, उसको यह जीव, अपने दु:ख का कारण मानकर, अपना शत्रु मानता रहा है और उससे द्वेष—नफरत—करता रहा है। इस प्रकार यह जीव अपनी इस अज्ञानता और इन राग-द्वेष मूलक हिंसा की भावनाओ के कारण ही अनादि काल से बुरे कर्मों का सचय करता रहा है, जिनके फलस्वरूप यह जीव अनादि काल से ही दुःख भोगता रहा है।

किन्तु वास्तविकता यह है कि जिस शरीर को अपना

मानकर और जिसके क्षणिक सुख के लिये यह जीव सब प्रकार के अच्छे, बुरे व हिंसा के कार्य कर रहा है, वह शरीर भी उसका अपना नही है। यह शरीर केवल एक जन्म का ही साथी होता है। अनादि काल से जन्म-मरण करते हुए इस जीव ने कितने शरीर धारण किये हैं, क्या कोई उनकी गिनती कर सकता है ? हाँ, इस जीव की आत्मा सदैव से वही एक ही है और अनन्त काल तक वही रहेगी। वस्तुत तो हम आत्मा ही हैं। अत हमे इस शरीर को सुख देने की ओर ध्यान न देकर अपनी आत्मा का कल्याण करने की ओर ही ध्यान देना चाहिए। जिस क्षण भी हम अपने को आत्मा और इस शरीर को पर मानकर तदनुसार आचरण करना प्रारम्भ कर देंगे, हमारे दु ख के कारण स्वयमेव ही दूर होते जायेंगे।

भगवान महावीर ने आगे बतलाया कि किसी भी जीव को सुख व दु ख देने वाले कोई अन्य जीव नही हैं, अपितु पूर्व मे किये हुए उसके स्वय के अच्छे व बुरे कर्म ही है। दूसरे जीव तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति हमे शस्त्र से घायल कर देता है तो हम उस शस्त्र को नही, अपितु उस शस्त्र के चलाने वाले व्यक्ति को ही अपराधी मानते हैं। ठीक इसी प्रकार किसी भी जीव को सुख व दु ख देने मे वास्तविक कारण उसके अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कर्म होते है, न कि वे जीव जिनके द्वारा ये दु ख व सुख मिलते हैं। इस तथ्य को हृदयंगम करके हमे अपने को सुख मिलने मे निमित्त बनने वाले जीवो के प्रति राग और अपने को दु ख देने मे निमित्त बनने वाले जीवो के प्रति द्वेष न करके, इन सुखों व दु खो को अपने ही कर्मों का

फल समझकर, उनको तटस्थ व समताभाव से सहन करना चाहिए। इस प्रकार तटस्थ व समताभाव से सुख व दुःख सह लेने पर हमारे पुराने कर्म तो अपना फल देकर नष्ट हो ही जायेंगे, भविष्य के लिये भी हमारे कर्मों के सञ्चय होने की सम्भावना बहुत कम रह जायेगी और इस प्रकार शनैः-शनैः हमारे दुःखों के कारणों का अभाव होता जायेगा। इस प्रकार की साधना करते रहने से तथा समताभाव से तप करते रहने से एक समय अवश्य ही ऐसा आयेगा जब हमारे दुःखों के कारणों—समस्त कर्मों—का सर्वथा अभाव हो जायेगा।

यहाँ पर यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि हमे जो भी सुख व दुःख मिलते रहते हैं, वे अधिकांश मे स्वयमेव ही मिलते रहते हैं। ऐसा तो बहुत कम होता है कि कोई अन्य व्यक्ति हमे दुःख व सुख दे, तभी हम दुःखी व सुखी हो। जैसे कि हम किसी दुर्घटना मे फँस जाते हैं, हम रोगग्रस्त हो जाते हैं, हमे व्यापार मे हानि हो जाती है, हमारे किसी इष्ट मित्र व सम्बन्धी की मृत्यु हो जाती है, ऐसे दुःख हमे स्वयमेव ही मिलते रहते हैं। इन दुःखों के लिये हम किसी अन्य व्यक्ति को उत्तरदायी न मानकर इन्हे अपने कर्मों का ही फल मानते हैं। तो फिर कभी-कभी जो दुःख हमे किन्ही अन्य व्यक्तियो के निमित्त से मिलते हैं, उनको भी हम अपने कर्मों का ही फल क्यो न माने?

यह संसार अनादि व अनन्त है

भगवान महावीर ने यह भी बतलाया कि यह संसार तथा इसकी समस्त आत्माएं व पुद्गल द्रव्य अनादि व अनन्त हैं। (अनादि—अन+आदि—का अर्थ है जिसका

कभी आदि—प्रारम्भ—न हुआ हो अर्थात् जो सदैव से हो। अनन्त—अन+अन्त—का अर्थ है जिसका कभी अन्त—विनाश—न हो, अर्थात् जो सदैव तक रहे)। इस संसार की समस्त आत्माए सदैव से हैं और वे सदैव तक रहेंगी। वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न शरीर ग्रहण करती रहती हैं और उन्ही कर्मों के अनुसार सुख व दु ख भोगती रहती हैं। जब तक उनके कर्मों का क्षय नही हो जाता, वे कोई-न-कोई शरीर धारण करती ही रहेंगी। जब उनके कर्मों का अभाव हो जायेगा तब वे मोक्ष मे चली जायेगी। मोक्ष मे भी प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहेगा। इन आत्माओ के अतिरिक्त जो कुछ भी इस ससार मे है वह सब पुद्गल (Matter) है। यह पुद्गल भी सदैव से है और सदैव तक रहेगा। हाँ, कुछ कारण मिलने पर इनका रूप परिवर्तन होता रहता है। जैसे जहाँ कभी समुद्र था वहा पहाड निकल आते हैं, जहाँ कभी पहाड थे वहाँ समुद्र बन जाते हैं। इसी प्रकार जो सोना कुछ समय पहले कडे के रूप मे था, सुनार उसका हार बना देता है। यहा भी कडे का रूप परिवर्तन हो गया परन्तु सोना विद्यमान ही रहा।

इसी प्रकार हम जो वृक्षो को बढता हुआ देखते हैं वह भी कोई नयी वस्तु अस्तित्व मे नहीं आ रही। ये वृक्ष भी हवा, पानी, मिट्टी, धूप आदि से पोषक तत्त्व प्राप्त करके बढते रहते हैं। इस प्रकार भगवान महावीर ने बतलाया कि इस ससार का एक भी परमाणु न तो कभी नया बना था और न एक भी परमाणु का कभी विनाश ही होगा। हा, उनका रूप परिवर्तन अवश्य होता रहता है।

अहिंसा : भगवान महावीर ने देखा कि संसार का

प्रत्येक प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी, विशाल-काय हाथी हो या छोटा सा कीडा, सब ही सुख पूर्वक जीवित रहना चाहते हैं। कोई भी प्राणी यह नहीं चाहता कि उसे किसी प्रकार का कष्ट हो। वह जो भी कार्य करता है अन्ततः सुख पाने के लिये ही करता है। परन्तु वह यह नही देखता कि उसके सुख प्राप्त करने के प्रयत्नों के कारण दूसरे प्राणियो को कष्ट तो नहीं हो रहा है, जबकि उसके ऐसे प्रयत्नों से दूसरे प्राणियों को कभी प्रत्यक्ष में और कभी परोक्ष में कष्ट होता रहता है। उदाहरण के लिये, अपने स्वाद और मनोरजन के लिए दूसरे जीवो की हत्या करना और अन्य प्रकार से कष्ट देना उनको प्रत्यक्ष में ही कष्ट पहुचाना है। इसी प्रकार लालच के वश खाद्य पदार्थों मे मिलावट करना और बढ़िया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना, दूसरो को परोक्ष रूप से कष्ट पहुचाना है, क्योंकि इस प्रकार के अनैतिक आचरण से कालान्तर में दूसरो को कष्ट उठाना पडता है। दूसरे प्राणियो को इस प्रकार से कष्ट देने के कारण वह व्यक्ति स्वय खोटे कर्मों का सचय करता है और इन खोटे कर्मों के फलस्वरूप कालान्तर मे उसको भी कष्ट उठाना पडता है। इस प्रकार ससार के प्राणियो द्वारा दूसरे प्राणियो को कष्ट पहुचाने और फिर उसके फलस्वरूप स्वयं कष्ट पाने का चक्र अनादि काल से चला आ रहा है। यदि ससार का प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणियों को इस प्रकार प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कष्ट देना छोड़ दे तो इस संसार में दुख का नाम निशान भी नही रहे। इसीलिए भगवान महावीर ने दूसरों को किसी भी प्रकार का कष्ट न देने अर्थात् अहिंसा का पालन करने का उपदेश दिया और बतलाया कि हिंसा ही सब दुखों की

जननी है और अहिंसा सब सुखो का स्रोत है। उन्होने कहा कि वस्तुत इस ससार मे अहिंसा ही परम धर्म है। इसके अतिरिक्त जो भी यम नियम आदि बतलाये गये हैं वे सब अहिंसा को दृढ करने के लिये ही हैं।

अपरिग्रह · भगवान महावीर ने बतलाया कि अहिंसा का पालन करना तो धर्म है ही, परन्तु जो प्राणी अपने पूर्व उपार्जित पापो के फलस्वरूप कष्ट पा रहे हैं, उनके कष्टो को दूर करना और उनको कम करने के प्रयत्न करना भी धर्म है। दूसरो के कष्टो को दूर करने के लिये हमको कुछ त्याग करना पडता है, अपने समय का त्याग, अपने धन का त्याग व अपने सुख का त्याग। जैसे किसी रोगी व्यक्ति की सेवा करना, उसको अपने धन से दवा दिलाना, इसी प्रकार कोई व्यक्ति भूख से व्याकुल हो उसको भोजन खिलाना, कोई व्यक्ति किसी कारण से भयभीत हो रहा हो उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना, कोई अनपढ हो तो उसको पढाने का प्रबन्ध करना, कोई किसी शोक से दुखी हो तो उसको सात्वना देना, आदि। इन सब कार्यों के लिये हमे अपना समय और धन देना पडता है तथा अपना सुख छोडना पडता है। यह सब त्याग के अन्तर्गत आता है। दूसरे शब्दो मे इसको दया करना व दान देना भी कहते हैं। इस दया, दान व त्याग की भावना को पुष्ट करने के लिये भगवान महावीर ने परिग्रह परिमाण व्रत का उपदेश दिया। उन्होने कहा कि अपनी आवश्यकताओ को कम से कम करते जाओ। अपनी धन सग्रह की लालसा पर अकुश रखो और उसको किसी सीमा मे बांध दो, जैसे कि हम एक मकान से अधिक नहीं रखेंगे, अमुक सख्या से अधिक कपड़े व अन्य वस्तुएँ नहीं रखेंगे, अमुक राशि से अधिक

धन नही रखेगे । इस प्रकार सीमा बाध लेने से हमारी लालसा कम होती जायेगी और हम एक सीमा तक ही लौकिक कार्य, व्यापार आदि करेंगे और अपना बचा हुआ समय व धन दूसरों का उपकार करने और अपनी आत्मा की उन्नति मे लगा सकेंगे । यही नही, इसके फलस्वरूप, उपलब्ध वस्तुओ का बटवारा भी अधिक से अधिक व्यक्तियों मे हो सकेगा। तात्पर्य यह है कि यदि भगवान महावीर के इस उपदेश का पालन किया जाये तो आज जो वर्ग-सघर्ष हो रहा है वह स्वयमेव ही दूर हो जायेगा।

इस विषय पर हम एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार कर सकते है । ससार मे किसी भी व्यक्ति की तृष्णाओ और इच्छाओ की कोई सीमा नही है । हमारी एक इच्छा पूरी हो नही पाती कि अन्य अनेको नई इच्छाएँ आकर खड़ी हो जाती हैं । यही दशा तृष्णाओ की भी है । यदि आज हमारे पास एक लाख रुपया है तो हम दस लाख पाने की तृष्णा करने लगते हैं, और जब दस लाख हो जाता है तो एक करोड पाने की तृष्णा हो जाती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी व्यक्ति की तृष्णाओ व इच्छाओ का कोई अन्त नही है । अपनी तृष्णाओ व इच्छाओ की पूर्ति के लिये हम तरह-तरह के अन्याय व अत्याचार करते हैं और अनुचित साधनो का प्रयोग करते है । और ऐसा करते समय हम इस बात की तनिक भी चिन्ता नही करते कि हमारे इन कार्यों से अन्य व्यक्तियों तथा पशु-पक्षियो को कितना कष्ट हो रहा है । विडम्बना तो यह है कि यह सब अन्याय व अत्याचार करने के पश्चात् भी यह निश्चित् नहीं होता कि हमारी सभी तृष्णाएँ व इच्छाएँ पूरी हो ही जायेगी । इन अन्यायो व अनुचित साधनो के फलस्वरूप व्यक्तियो मे

वर्ग-संघर्ष का जन्म होता है। परिणाम यह होता है कि न तो हमको ही सुख शान्ति मिल पाती है न अन्य व्यक्तियो को ही। संसार के अधिकाश युद्ध इन्ही तृष्णाओं की पूर्ति के लिए लडे गये और उनके फलस्वरूप जन व धन की कितनी हानि हुई इसका लेखा-जोखा करना असभव है। यदि हम अपनी तृष्णाओ व इच्छाओ पर अकुश लगाये और सतोषपूर्वक जीवन-यापन करें तो इससे केवल हमको ही सुख व शान्ति नहीं मिलेगी अपितु अन्य व्यक्तियो को भी सुख व शान्ति मिलेगी। इसीलिये भगवान महावीर ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी तृष्णाओ व इच्छाओ पर अकुश लगाने और अपनी आवश्यकताओ को कम करते हुए सतोषपूर्वक जीवन-यापन करने का उपदेश दिया था। इसका तात्पर्य यह नही कि हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाये अपितु इसका तात्पर्य यही है कि परिश्रम, ईमानदारी तथा अहिंसक व समुचित साधनो से हमको जो भी मिले हम उसमे सतोष रखे और यथाशक्ति अपने तन, मन व धन से दूसरो की भलाई करते रहे। आज जिस समाजवाद और अधिकतम सम्पत्ति सीमा नियम को लागू करने के लिये शासक अपने अधिकार व कानून का प्रयोग कर रहे हैं, भगवान महावीर ने प्रत्येक व्यक्ति से उसको स्वत ही अपने ऊपर लागू करने का आग्रह किया था।

संयम : भगवान महावीर ने कहा था कि अहिंसा व परिग्रह-परिमाण व्रत के पालन के साथ-साथ हमको अपने मन, अपने कान, आख, नाक, जिह्वा आदि इन्द्रियों को भी अपने वश में रखना चाहिये अर्थात् अपना जीवन सयमपूर्वक व्यतीत करना चाहिये। सयम का जीवन मे बहुत बडा महत्व है। इन इन्द्रियो को अपने वश में रखनें

के बजाये यदि हम इन इन्द्रियों की वासनाओ के दास बन गये तो हमारे अहिंसा व परिग्रह-परिमाण आदि व्रत सब व्यर्थ हो जायेंगे और हम चरित्रहीन हो जायेंगे। एक चरित्रहीन व्यक्ति उस नदी के समान होता है जो अपने किनारो को तोड़ कर बहने लगती है और सारे क्षेत्र के लिये तबाही व बरबादी का कारण बन जाती है। ऐसे ही चरित्रहीन व्यक्ति समाज के लिये बोझ बन जाते हैं। दूसरो के लिये दुख का कारण बनने के साथ-साथ वे अपना स्वास्थ्य नष्ट कर लेते हैं और स्वय भी जीवन पर्यन्त दुखी ही रहते हैं। इसके विपरीत एक सयमी व्यक्ति स्वय भी सुखी व स्वस्थ रहता है तथा समाज मे भी आदर पाता है।

इसी प्रकार हमें कुछ तप करने का अभ्यास भी करते रहना चाहिये। तप करने का अर्थ केवल शरीर को कष्ट देना ही नहीं है अपितु शरीर को बुरी परिस्थितियो मे भी अभ्यस्त रखना है। जिस प्रकार एक सैनिक शान्ति के दिनो में भी नियमित जीवन व्यतीत करता है और प्रति वर्ष कुछ समय के लिये युद्ध जैसी परिस्थितियो में भी रहता है, जिससे कि वास्तविक युद्ध के लिये वह सदैव तैयार रहे, इसी प्रकार तप करते रहने से भी व्यक्ति अपने शरीर को अपने वश मे रख सकता है और प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी समतापूर्वक जीवन व्यतीत करने का अभ्यस्त हो सकता है, जिससे कि कठिनाई के समय वह अपने लक्ष्य से विचलित न हो जाये। सयम पालने और तप करने से हमारे पूर्व मे किये हुए पापों का नाश भी होता है।

पुनर्जन्म : भगवान महावीर ने देखा कि ससार में

प्रत्येक प्राणी दुखी है, कोई कम कोई अधिक। कोई किसी एक कारण से दुखी है तो दूसरा किसी अन्य कारण से। अधिकाश मे ये दुख के कारण स्वयमेव ही आ खडे होते हैं। यह आवश्यक नही कि कोई अन्य व्यक्ति किसी को दुखी करे तभी वह दुखी हो। अधिकाशतया यह देखा जाता है कि सुख पाने के अनेक प्रयत्न करने पर भी मनुष्य सुखी नही हो पाता, जबकि कभी-कभी बिना विशेष प्रयत्न किये भी उसको सुख प्राप्त हो जाता है। उन्होने देखा कि ससार मे अनेक विषमताए और विडम्बनाए है। जैसे कि एक व्यक्ति बिना परिश्रम किये तथा दूसरो पर अन्याय व अत्याचार करते हुए भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, जबकि एक अन्य व्यक्ति परिश्रम व ईमानदारी से कार्य करता है और दूसरो का उपकार करने मे लगा रहता है, फिर भी वह दुखी रहता है। क्या यह सुख—अन्याय व अत्याचार का ही परिणाम है ? क्या अन्याय व अत्याचार करने वाले व्यक्ति को कभी दण्ड नही मिलेगा ? क्या परोपकार करने वाले व्यक्ति को अपने अच्छे कार्यों का कभी सुफल नही मिलेगा ? इसी प्रकार कुछ बालक जन्म से ही दुखी, दरिद्री, अपग व रोगी होते हैं, जबकि कुछ अन्य बालक जन्म से ही स्वस्थ व सुखी रहते है। प्रश्न यह है कि पहले वाले बालको को किस अपराध का दण्ड मिल रहा है और अन्य बालको को किस भलाई का पुरस्कार मिल रहा है ? यह सब केवल घटनावश (By accident) ही तो नही हो रहा है। इन सब परिणामो का कुछ न कुछ कारण तो होना ही चाहिए। किन्तु जनसाधारण को उनमे कोई तर्क-सम्मत औचित्य दिखाई नही पडता। भगवान महावीर ने इस समस्या पर गहन चिन्तन व मनन किया। जब

उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया तो उन्होंने ससार को बतलाया कि कोई भी प्राणी केवल वर्तमान में दिखने वाला स्थूल शरीर ही नही है, वास्तविक प्राणी तो उसकी आत्मा है। इस आत्मा का अस्तित्व अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा। जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रों को उतार कर नये वस्त्र धारण कर लेते हैं उसी प्रकार यह आत्मा एक शरीर त्याग कर अपने कर्मों के अनुसार नये-नये शरीर धारण करती रहती है, और अपने कर्मों के अनुसार ही वह सुख व दुख भोगती रहती है। यह आवश्यक नही है कि इस जन्म मे हम जो भी अच्छे व बुरे कार्य कर रहे हैं उनका फल हमको इसी जन्म मे मिल जाये। वह फल हमको इसी जन्म मे भी मिल सकता है और अगले जन्मो मे भी मिल सकता है। इसी प्रकार पिछले जन्मो मे हमने जो अच्छे व बुरे कार्य किये हैं उनका फल हमको सभवतः पिछले जन्मो मे भी मिल चुका है, इस जन्म में भी मिल सकता है और अगले जन्मो मे भी मिल सकता है। यह ससार-चक्र अनादि काल से इसी प्रकार चलता आया है और भविष्य मे भी तब तक इसी प्रकार चलता रहेगा, जब तक हम अपने पुरुषार्थ से अपने समस्त कर्मों को नष्ट नही कर देते। यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है।

मुक्ति का द्वार सब जीवों के लिए खुला है

भगवान महावीर ने बतलाया कि जब तक इस जीव के साथ अच्छे व बुरे कर्मों का बन्धन लगा हुआ है, तब तक यह जीव इस ससार में जन्म मरण करता हुआ सुख व दुःख भोगता रहेगा। परन्तु जब यह जीव अपने सत्पुरुषार्थ अर्थात् अहिंसा, सयम, तप, त्याग, ध्यान, आदि के द्वारा इन कर्मों के बन्धन को छिन्न-भिन्न कर देगा, तभी

यह जीव मुक्ति पाने का अधिकारी हो जायेगा। अपने कर्मों को नष्ट करने में उसे किसी भी अन्य जीव की सहायता की अपेक्षा नही है। यह कार्य वह स्वयं, और केवल स्वय ही, अपने सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर सकता है। एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर यह आत्मा अनन्त काल तक मुक्ति में ही रहती है, और फिर लौटकर संसार मे नही आती, क्योकि इस जीव को ससार मे जन्म मरण कराने व सुख दुःख देने के कारण जो कर्म होते हैं, उनका ही सर्वथा अभाव हो जाता है। मुक्ति मे इस जीव के साथ किसी भी प्रकार का भौतिक शरीर नही रहता, और न उसको किसी प्रकार का भौतिक सुख प्राप्त करने की इच्छा ही रहती है। मुक्ति में यह आत्मा अनन्त काल तक एक अनुपम, अतीन्द्रिय, सच्चे सुख का उपभोग करती रहती है। भगवान महावीर ने बतलाया कि यह मुक्ति का द्वार किन्ही विशिष्ट व्यक्तियो के लिए ही नहीं अपितु ससार के प्रत्येक प्राणी के लिए खुला हुआ है, केवल उसको सम्यक् पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है।

तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियाँ

भगवान महावीर के जन्म के समय दो प्रकार की विचार धाराएँ प्रचलित थीं—एक श्रमण और दूसरी वैदिक। वैदिक विचारधारा वेदो के अनुसार क्रियाकाण्ड और यज्ञो के अनुष्ठान पर बल देती थी, जबकि श्रमण विचारधारा, व्यक्ति की पवित्रता, अहिंसा, सयम, तप और उसकी आत्मोन्नति पर अधिक बल देती थी। उस समय के क्षत्रिय अधिकतर श्रमण विचारधारा के पोषक थे और ब्राह्मण वैदिक विचारधारा के।

भगवान महावीर के जन्म से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व जैनो के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ हुए थे और भगवान महावीर के समय में भी उनके द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म प्रचलित था।

भगवान महावीर के समय मे श्रमण विचारधारा के पोषक कई प्रसिद्ध साधु थे, जिनमें निम्नलिखित पांच मुख्य थे, (१) पूर्ण काश्यप, (२) मस्करि गोशालि पुत्र (मखलि गोशाल), (३) सजय वेलट्ठि पुत्त, (४) अजित केश कम्बलि, (५) प्रकुध कात्यायन। यद्यपि उस समय कुछ व्यक्ति उन साधुओ के अनुयायी भी थे, पर जन साधारण पर अधिकाश मे ब्राह्मणो का ही प्रभाव था। ब्राह्मण यज्ञ करते थे, जिनमे पशुओ की व कभी-कभी मनुष्यों तक की बलि दी जाती थी और उनका मास खाया जाता था। मांसाहार का आम रिवाज था। स्त्रियो और विशेषकर शूद्रो की सामाजिक दशा बहुत खराब थी। उनको किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नही थे। उनको पग-पग पर अपमानित और पददलित किया जाता था। तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर के समय मे यहाँ पर हिंसा का जोर था और जनसाधारण धार्मिक अन्धविश्वास व बौद्धिक दासता से पूर्णतया ग्रस्त था।

महात्मा बुद्ध को भी, जो भगवान महावीर के समकालीन थे, उस समय फैली हुई हिंसा से बहुत दुख हुआ था। उन्होंने भी ससार के कष्टों से छुटकारा पाने का मार्ग खोजने के लिए गृह त्याग किया था। अपने साधना काल में उन्होंने कुछ समय के लिए जैन मुनि की दीक्षा भी ली थी। परन्तु जैन मुनि को कठिन चर्य्या का पालन न कर सकने के कारण उन्होंने दिगम्बर वेश त्याग कर वस्त्र

धारण कर लिए थे। अन्तत. उन्होंने बौद्धधर्म की स्थापना की जो मुख्य रूप से अहिंसा पर ही आधारित है, और जिसमे हिंसक क्रिया-काण्ड को कोई स्थान नही है।

भगवान महावीर की कुछ विशिष्टताएं

वैसे तो भगवान महावीर का सारा जीवन ही विशिष्ट था, परन्तु यहाँ पर हम उनकी कुछ ही विशिष्टताओ की चर्चा करेंगे।

सच्चे सुख का मार्ग सबके लिए

भगवान महावीर राजपुत्र थे। उनको तत्कालीन सभी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थी। फिर उनके सम्मुख ऐसा कौन सा दु ख व समस्या थी, जिसके कारण उन्होने राज-पाट और समस्त परिग्रह तथा बन्धु बान्धवो का मोह छोडकर नग्न दिगम्बर वेश धारण किया ?

इसका उत्तर यही है कि भगवान महावीर दूरदर्शी थे। यह ठीक है कि उनको उस समय कोई भौतिक दु ख नहीं था, परन्तु इस बात का क्या विश्वास था कि उनको जीवन भर कोई भी दु ख नहीं सतायेगा। फिर वे स्वयं दु खी नही थे तो क्या हुआ, वे अपने चारो ओर तो दु खी प्राणियो को देख रहे थे। धर्म के नाम पर पशुओ के रक्त से होली खेली जा रही थी। पशुओ का आर्तनाद और दीन दुखियो का करुण क्रन्दन उनके हृदय को विदीर्ण किये डालता था। वह केवल अपने लिए ही नही अपितु ससार के प्रत्येक प्राणी के लिए सच्चे सुख का मार्ग खोजने निकले थे, और अन्तत. अपने चिन्तन, मनन, तप, त्याग व ध्यान आदि के द्वारा उन्होंने वह सच्चे सुख का मार्ग प्राप्त कर

भी लिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीर ने जो मार्ग दिखलाया था, वह केवल उनके अपने शाश्वत सुख के लिये ही नहीं था, अपितु वह तो ससार के प्रत्येक प्राणी को सच्चा, निर्बाध व अनन्त सुख प्राप्त कराने वाला था। उनकी धर्म सभा मे, केवल विशिष्ट व्यक्तियो या केवल मनुष्यो के लिए ही नही, अपितु समस्त पशु पक्षियो के लिए भी समुचित स्थान था। प्रत्येक जाति के पशु-पक्षी भी उनकी धर्म सभा मे आकर शाति का अनुभव करते थे। ऐसो परिस्थितियो में उनके द्वारा दिखलाये हुए मार्ग मे मनुष्यो मे ऊँच और नीच का भेद उठने का तो प्रश्न ही नही उठता। ससार के प्रत्येक प्राणी को अनन्त व सच्चा सुख प्राप्ति के समान अवसर प्रदान करने के कारण ही उनकी धर्म सभा समवशरण—जहाँ पर प्रत्येक प्राणी को किसी भी भेदभाव के बिना समान रूप से शरण मिल सके—कहलाती थी।

उन्होने मनुष्यो की उच्चता व नीचता, उनके जन्म व वेश से न मानकर उनके कर्मों से मानी थी। उनका कहना था कि सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं बन जाता, केवल ओकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नही बन जाता, निर्जन वन मे रहने मात्र से ही कोई मुनि नही बन जाता और केवल वल्कल वस्त्र पहनने से कोई तपस्वी नहीं हो जाता। इसके विपरीत समता पालने से श्रमण, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण, चिन्तन, मनन व ज्ञान से मुनि तथा तपस्या करने से तपस्वी होता है।

(उत्तराध्ययन, २५/३१-३२)

एक आदर्श नेता

भगवान महावीर राजपुत्र थे। उनके नाना व अन्य

सम्बन्धी भी भिन्न भिन्न प्रदेशो के शासक थे। यदि वे चाहते तो अपने राज्याधिकारो का प्रयोग करके उन प्रदेशों मे पशुबलि तथा अन्य प्रकार की हिसा राजाज्ञा द्वारा बन्द करा सकते थे। परन्तु उन्होने राजकीय अधिकारो का प्रयोग उचित नही समझा। क्योकि वे जानते थे कि राजकीय नियम स्थायी नही होते। शासन मे परिवर्तन होने के साथ-साथ वे भी बनते व बिगडते रहते हैं। इसलिए एक आदर्श नेता के समान पहले वे स्वय सर्वोच्च और आदर्श अहिसक बने और उसके पश्चात ही उनकी अहिसक वृत्ति के प्रभाव से जन-साधारण का हृदय परिवर्तन हुआ। वास्तव मे अपने अधिकारो का प्रयोग करके राजाज्ञा द्वारा हिसा बन्द कराने के परिणाम क्या इतने प्रभावशाली व स्थायी हो सकते थे, जितने कि उनके द्वारा अपना समस्त जीवन ही अहिसामय बना लेने से हुए ? आज सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष को अहिसक बनाने का श्रेय यदि किसी को प्राप्त है तो वह भगवान महावीर को ही है।

पूर्ण ज्ञानी होने तक मौन ही रहे

उनकी एक विशिष्टता यह थी कि जब तक उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हो गया, वे मौन रहकर ही चिन्तन-मनन व तपस्या मे लीन रहे और अपने साधना-काल में उन्होने ससार को कोई उपदेश नही दिया। उनकी यह मान्यता थी जब तक कोई व्यक्ति स्वयं ही पूर्ण ज्ञानी न हो, तब तक वह दूसरो को उपदेश कैसे दे सकता है ? यद्यपि उस समय तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित जैनधर्म प्रचलित था और भगवान महावीर ने भी उसी धर्म का प्रचार किया, परन्तु फिर भी स्वय सर्वज्ञ होने तक उन्होंने

मौन ही रक्खा और सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही उन्होने धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। उनका उपदेश केवल मौखिक ही नही था, अपितु जिस मार्ग पर चलकर वे स्वय अर्हन्त बने, उसी मार्ग पर चलने के लिये ही उन्होंने ससार के प्राणियो को उपदेश दिया। न तो उन्होंने कभी यह दावा किया कि वे ईश्वर के अवतार हैं अथवा ईश्वर के द्वारा संसार के कल्याण के लिए भेजे गये कोई विशिष्ट व्यक्ति हैं, न उन्होंने ससार को अपने पीछे चलने का नारा ही लगाया। उन्होने तो यहां तक कहा, "जो कुछ मैंने कहा है, उसको केवल इसलिए ही सत्य न समझो कि वह मैंने कहा है। अपितु यदि आप उसको अपने स्वय के चिन्तन, मनन व अनुभव के द्वारा सत्य पाओ, तभी सत्य समझो।" इस प्रकार उनके मार्ग मे अन्धश्रद्धा व अन्ध-विश्वास को कोई स्थान नहीं था। उनका सम्पूर्ण जीवन एक खुली पुस्तक के समान था जिसका कोई भी अध्ययन कर सकता था और जहां पर कोई भी छिपाव व दुराव नही था। उनकी कथनी व करनी में कोई भी अन्तर न होने के कारण उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म शीघ्रता से देश व विदेशों मे फैल गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए कभी भी बल प्रयोग का सहारा नही लिया। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि धर्म प्रचार के लिये आज तक किसी भी जैन धर्माव-लम्बी ने हिंसा का सहारा नही लिया।

एक सर्वोच्च त्यागी

साधना के लिये गृह-त्याग करते समय जीवन के लिये अति आवश्यक वस्तुओ की तो बात ही क्या, भग-वान महावीर ने अपने शरीर पर सूत का एक तार तक

नही रक्खा और निर्वाण प्राप्त करने तक वे नग्न दिगम्बर अवस्था में ही रहे। उस समय वैदिक ऋषि नगरो से बाहर वनों में अवश्य रहते थे, परन्तु वे एक गृहस्थ के समान ही रहते थे। उनके रहने के लिये उनका अपना आश्रम होता था। उनके पास पत्नी, सन्तान, धन-धान्य, गाय अदि सभी प्रकार का परिग्रह होता था। ऐसे समय में भगवान महावीर ने ससार के सम्मुख एक अनुपम और सर्वोच्च त्यागी का आदर्श प्रस्तुत किया।

एक बात और भी है। वैदिक ऋषि अपने आश्रमो की सुरक्षा और अपने धार्मिक अनुष्ठानो को निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिये स्थानीय राजाओं पर निर्भर रहते थे, क्योकि बनो मे रहने वाले असभ्य व्यक्ति उनके आश्रमो को नष्ट करते रहते थे और धार्मिक कार्यों मे बाधा डालते रहते थे। इसके विपरीत भगवान महावीर ने गहन बनो मे अकेले ही विहार किया। उनके साधना काल मे अनेको सभ्य व असभ्य व्यक्तियो ने उनको जान-बूझ कर शारीरिक व मानसिक कष्ट दिये, परन्तु वे इन कष्टो को निर्विकार रहकर समताभाव से सहते रहे। उन्होने कभी भी इनका प्रतिकार नही किया। भगवान महावीर राजपुत्र थे और यदि वे चाहते तो अपनी सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था करा सकते थे, परन्तु उन्होने ऐसा कभी नही किया और अकेले ही अपने मार्ग पर अविचल डटे रहे।

दैन्य से छुटकारा : पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा

भगवान महावीर के समय मे जो वैदिक यज्ञ होते थे, उनमें इन्द्र, वरूण, अग्नि आदि देवताओ का आह्वान किया जाता था और उनसे आरोग्यता, धन-वैभव, स्त्री-पुत्र आदि प्रदान करने की प्रार्थना की जाती थी। वेदों

में इसी प्रकार के सैंकड़ो मन्त्र हैं, जिनमें देवताओ से अपने शत्रुओ के विनाश के लिए और स्वयं को आरोग्यता, सुख-समृद्धि, स्त्री-पुत्र आदि प्रदान करने के लिए प्रार्थनाएं की गयी हैं। इस प्रकार इन धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा अपने लिए सुख समृद्धि प्राप्त करने के लिए, एक दीन-हीन व्यक्ति के समान, देवताओ की कृपा की आकाक्षा की जाती थी। परन्तु भगवान महावीर ने जनसाधारण को इस दैन्य से छुटकारा दिलाया। उन्होंने ससार को बतलाया कि अपनी आत्मा के कल्याण के लिये किसी भी व्यक्ति को परमुखापेक्षी होने की आवश्यकता नही है। कोई भी व्यक्ति स्वय अपने ही सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है और अन्तत मुक्ति प्राप्त कर सकता है। भगवान महावीर ने बतलाया कि धन-वैभव, स्त्री-पुत्र आदि बाह्य पदार्थ सच्चे सुख के कारण नही हैं। सच्चा सुख किसी भी बाह्य साधन की अपेक्षा नही रखता। सच्चा सुख तो अपनी आत्मा मे ही है और वह स्वयं अपने ही सम्यक् पुरुषार्थ, अहिंसा, सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

इसके साथ-साथ भगवान महावीर ने ब्राह्मण वर्ग के वर्चस्व (इजारेदारी) पर भी करारी चोट की। उस समय जितने भी वैदिक यज्ञ व अनुष्ठान आदि होते थे, वे केवल ब्राह्मण ही करते थे। बडे से बडा राजा भी ब्राह्मणों की स्वीकृति और उनके सक्रिय सहयोग के बिना कोई भी धार्मिक कार्य नही कर सकता था। धर्म का सारा ढाँचा ही ब्राह्मणों के ऊपर आधारित था। परन्तु भगवान महावीर ने बतलाया कि किसी भी धार्मिक कार्य तथा अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए किसी भी अन्य

व्यक्ति की आज्ञा व सहयोग की आवश्यकता नही है। धर्म किसी भी व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत विषय है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपना कल्याण स्वय अपने ही सत् प्रयत्नो से कर सकता है। किसी भी अन्य व्यक्ति के द्वारा किये हुए अनुष्ठान से किसी का कल्याण नही हो सकता। जिस प्रकार किसी रोग को दूर करने के लिए रोगी को स्वय ही औषधि सेवन करनी पडती है, किसी अन्य व्यक्ति के औषधि सेवन से रोगी का रोग दूर नही हो सकता, ठीक इसी प्रकार अपनी आत्मा का कल्याण करने और सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वय ही सम्यक् पुरुषार्थ करना पडेगा। इस प्रकार भगवान महावीर ने जन साधारण को दैन्य से और एक विशेष वर्ग के वर्चस्व से छुटकारा दिलाकर व्यक्तिगत पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा की।

स्त्रियों के समानाधिकार को मान्यता

भगवान महावीर ने, जहाँ तक धार्मिक विषयो का सम्बन्ध है, स्त्रियो को पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र व स्वावलम्बी बतलाया। उन्होने कहा कि एक स्त्री को भी धर्म का पालन करने और अपनी आत्मा का कल्याण करने की उतनी ही स्वतन्त्रता है, जितनी कि एक पुरुष को। धर्म प्रत्येक व्यक्ति का, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, व्यक्तिगत विषय है। एक स्त्री भी अपने पति अथवा अन्य किसी सम्बन्धी की अपेक्षा के बिना धार्मिक क्रियाओ को सम्पन्न कर सकती है। यही कारण था कि भगवान महावीर के सघ मे साध्वियो और श्राविकाओ (गृहस्थ महिलाओ) की संख्या साधुओ और श्रावको से कम नही थी। उनके सघ को साध्वियों की प्रमुख एक कुमारी कन्या चन्दनबाला थी, जिसने अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिये

वैवाहिक बन्धन में बन्धने से इन्कार कर दिया था। इस प्रकार जब वैदिक ऋषि स्त्रियों को हर प्रकार से पुरुषों की मुखापेक्षी समझते थे, तब भगवान महावीर ने स्त्रियो की स्वतन्त्रता व उनके समान अधिकार की घोषणा की। यही कारण है कि आज भी भारत में हजारो जैन साध्वियाँ अपनी आत्मा का कल्याण करने के साथ-साथ मानव-समाज का भी कल्याण करती हुई सारे देश की पदयात्रा करती रहती हैं।

सर्वोच्च समन्वयवादी

भगवान महावीर सर्वोच्च समन्वयवादी थे। उन्होने बतलाया था कि प्रत्येक पदार्थ मे विभिन्न अपेक्षाओ से बहुत से गुण होते हैं। परन्तु अधिकांश व्यक्ति अपनी अज्ञानता के कारण किसी भी पदार्थ को विभिन्न अपेक्षाओं से न देखकर उसे केवल अपने एक विशेष दृष्टिकोण से ही देखते हैं और फिर उस एक दृष्टिकोण से जो कुछ जाना है उसका ही आग्रह करने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे उस पदार्थ का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में तो असफल रहते ही हैं, साथ-साथ एक-दूसरे से मतभेद व वैमनस्य भी पैदा कर लेते हैं।

इस सम्बन्ध में हम एक उदाहरण देते हैं। राजा रामचन्द्र जी मे क्या-क्या गुण थे ? क्या वे केवल पुत्र ही थे ? क्या वे केवल पति ही थे ? क्या वे केवल भाई ही थे ? क्या वे केवल पिता ही थे ? आदि-आदि। यदि महाराज दशरथ यह कहते कि रामचन्द्र जी केवल पुत्र ही हैं और कुछ नहीं, तो क्या उनका यह कथन सर्वांग में सत्य माना जाता ? राम पुत्र अवश्य थे, परन्तु यह केवल सत्य का एक अंश मात्र ही है। महाराज दशरथ की अपेक्षा पुत्र

होने के साथ-साथ, सीता जी की दृष्टि से वे पति भी थे, भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न की दृष्टि से वे भाई भी थे, लव व कुश की दृष्टि से वे पिता भी थे। रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमे इन सब अपेक्षाओ को दृष्टि मे रखना पडेगा। हम एक और उदाहरण लेते है। क्या हम पाच मीटर की रेखा को यह कह सकते हैं कि यह लम्बी है, या छोटी है अथवा यह बराबर है ? इस पाच मीटर की रेखा को हम चार मीटर की रेखा की अपेक्षा से कहे तो हम इसको लम्बी कहेगे। उसी रेखा को सात मीटर की रेखा की अपेक्षा से कहे तो हम उसी को छोटी कहेगे। इसी प्रकार यदि उसको पाच मीटर की किसी अन्य रेखा की अपेक्षा से कहे तो उसे बराबर कहेगे। इस प्रकार एक ही रेखा किसी अपेक्षा से लम्बी है, किसी अपेक्षा से छोटी है तथा किसी अपेक्षा से बराबर है। यदि हम इन तीनो की अपेक्षाओ को दृष्टि मे न रखकर केवल यही कहेगे कि यह रेखा लम्बी है, या छोटी है या बराबर है तो हमारा कथन सर्वांग मे सत्य नही होगा। सम्पूर्ण सत्य को जानने के लिये हमे इन तीनो अपेक्षाओ का समन्वय करना होगा। भगवान महावीर ने सम्पूर्ण सत्य जानने और आपसी वैमनस्य तथा मतभेद दूर करने के लिये इसी प्रकार के समन्वय पर बल दिया था।

उनके सिद्धान्त सर्वकालिक और सार्वभौमिक थे

भगवान महावीर ने जो सिद्धान्त ससार को दिये, वे किसी विशिष्ट श्रेणी के व्यक्तियो, किसी विशेष देश तथा किसी विशेष काल के लिये ही नही थे, अपितु उनके सिद्धान्त सार्वभौमिक और देश तथा काल की सीमाओं से परे थे। उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, अपरिग्रह व

पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त आज भी उतने ही सत्य, उप-योगी व व्यवहारिक है, जितने कि वे उनके समय मे थे।

एक बात हम यहाँ स्पष्ट कर दे कि हमने ऊपर जो तुलनात्मक विवेचन किया है, वह केवल वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिये किया है। हमारा अभिप्राय किसी की भी प्रतिष्ठा को कम आकने का नही है।

क्या भगवान महावीर सर्वज्ञ थे ?

कुछ व्यक्ति भगवान महावीर के सर्वज्ञ होने पर शका करते हैं। परन्तु उनकी यह शका निर्मूल है। यदि वे पूर्वाग्रह छोडकर खुले मस्तिष्क से गम्भीरतापूर्वक विचार करेगे तो उनकी इस शका का समाधान हो जायेगा।

ससार की जनसख्या कई अरब है। इन समस्त व्यक्तियो को एक-सा ज्ञान नहीं होता, किसी को कम होता है किसी को अधिक। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो थोडा-सा अध्ययन करके ही पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, जबकि कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो पर्याप्त परिश्रम करने पर भी समुचित ज्ञान का उपार्जन नही कर पाते। कुछ बालक जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि के होते हैं, जबकि कुछ बालक जन्म से ही मन्द बुद्धि होते हैं। एक कक्षा में सभी बालक एक साथ और एक समान ही शिक्षा पाते हैं, फिर भी कुछ बालक परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं और कुछ असफल रह जाते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि संसार मे समस्त व्यक्तियो को एक समान ज्ञान नही होता, कुछ को कम होता है और कुछ को अधिक होता है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। ज्ञान का आधार यह भौतिक शरीर नही होता। यदि ज्ञान भौतिक शरीर के आधार

और अनुपात से होता तो मोटे-ताजे व्यक्ति मे ज्ञान अधिक होता और दुबले-पतले व्यक्ति मे कम होता। परन्तु यह बात जनसाधारण के अनुभव के विपरीत है। कुछ व्यक्ति बहुत मोटे ताजे व पहलवान होते हैं, परन्तु वे बहुत ही मन्द बुद्धि होते हैं, जबकि कुछ व्यक्ति दुबले-पतले व निर्बल होते हैं, परन्तु वे बहुत ही कुशाग्र बुद्धि होते हैं। इस प्रकार जब हम भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे ज्ञान की न्यूनता व अधिकता देखते हैं तो यह असम्भव नही दीखता कि किसी व्यक्ति में ज्ञान की सम्पूर्णता भी हो। इसलिए हम कह सकते हैं कि भगवान महावीर का सर्वज्ञ होना असम्भव नहीं है।

वास्तव मे ससार के प्रत्येक जीव मे सर्वज्ञ होने की शक्ति है, परन्तु उसकी इस शक्ति पर कर्मों का आवरण पड़ा हुआ है। किसी प्राणी की शक्ति पर यह आवरण अधिक गाढ़ा है और किसी पर कम गाढा। इसी कारण से प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान मे भिन्नता होती है। जैसे-जैसे यह कर्मों का आवरण हल्का होता जाता है उस व्यक्ति की ज्ञान शक्ति अधिक विकसित दिखाई देती है। जिस व्यक्ति की शक्ति पर से यह कर्मों का आवरण बिल्कुल हट जाता है वही सम्पूर्ण ज्ञानी हो जाता है। व्यक्ति के ज्ञान की तुलना हम सूर्य के प्रकाश से और कर्मों की तुलना बादलो से कर सकते हैं। सूर्य का प्रकाश तो सदैव ही सम्पूर्ण तथा एक-सा रहता है, परन्तु हमारे सामने आकाश मे बादल आ जाने के कारण ही हमको वह प्रकाश पूरा नही मिल पाता। जैसे-जैसे बादलों का आवरण हल्का होता जाता है, सूर्य का प्रकाश तीव्र होता जाता है। जब बादल बिल्कुल हट जाते हैं तब हम सूर्य का पूर्ण प्रकाश पा लेते हैं। सूर्य के प्रकाश मे जो

न्यूनता व अधिकता होती है वह बादलों के कारण से ही होती है। बिल्कुल यही बात किसी भी व्यक्ति के ज्ञान के सम्बन्ध में भी है। भगवान महावीर ने अपने तप, त्याग व ध्यान आदि के द्वारा ज्ञान को ढकने वाले कर्म रूपी आवरण को बिल्कुल नष्ट कर दिया था, फलस्वरूप वे सर्वज्ञ हो गये थे।

ससार के जीवो के ज्ञान की तुलना हम तलवार की धार से भी कर सकते हैं। तलवार की धार सदैव ही तलवार मे विद्यमान होती है, परन्तु जब तक तलवार को सान पर नही चढाया जाता तब तक वह प्रकट नही हो पाती। जब उस तलवार को सान पर चढाया जाता है तो वह धार तीव्र हो जाती है और प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव मे स्वभाव से ही पूर्ण ज्ञान विद्यमान है, परन्तु जब तक वह अपने सम्यक्-प्रयत्नो से उस ज्ञान को ढकने वाले कर्मों को नष्ट नही कर देता तब तक वह ज्ञान पूर्ण रूप से प्रकट नही हो पाता।

भगवान महावीर के सर्वज्ञ होने का एक और प्रमाण यह है कि भगवान महावीर ने जो सिद्धान्त और तथ्य प्रतिपादित किये थे वे अब विज्ञान द्वारा भी स्वीकृत किये जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप हम यहाँ पर कुछ तथ्य दे रहे हैं :

(१) भगवान महावीर ने बतलाया था कि पुद्गल (Matter) अनादि और अकृत्रिम है, न तो इसको किसी ने बनाया है और न इसको कोई नष्ट ही कर सकता है, हा, केवल उसका रूप ही बदला जा सकता है। जैसे मिट्टी, पानी, वायु व प्रकाश आदि की सहायता से पेड़ बढते हैं। उनको काटकर उनकी लकड़ी से लकड़ी का सामान बनाया

जाता है। जलाने से वह लकडी धुए, कोयला, राख, गमा आदि मे परिवर्तित हो जाती है परन्तु उसके परमाणु किसी न किसी रूप मे सदैव ही विद्यमान रहते हैं। आज यह सिद्धान्त विज्ञान को भी मान्य है।

(२) भगवान महावीर ने बतलाया था कि यह ससार अनादि व अनन्त है। न इसकी किसी समय उत्पत्ति हुई और न इसका कभी विनाश होगा। आज बहुत से वैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं। वस्तुत वैज्ञानिक अभी तक निश्चित रूप से यह नही जानते कि ससार की उत्पत्ति कब और कैसे हुई। जैसे-जैसे वैज्ञानिक अन्तरिक्ष मे नई-नई खोजे कर रहे है और इनके फलस्वरूप नये-नये तथ्य प्रकाश मे आ रहे हैं, वैज्ञानिक इस ससार की उत्पत्ति और इसकी आयु के सम्बन्ध मे अपनी पुरानी धारणाओ को छोडते जा रहे हैं।

(३) भगवान महावीर ने कहा था इस ससार मे अनन्तानन्त जीव भरे हुए हैं। आज विज्ञान भी यह मानता है।

(४) भगवान महावीर ने बतलाया था कि वनस्पति मे भी जीवन और चेतना होती है। आज विज्ञान भी यह तथ्य स्वीकार करता है।

(५) भगवान महावीर ने आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म का सिद्धान्त ससार को दिया था। यद्यपि विज्ञान ने इस तथ्य को शत प्रतिशत मान्यता तो नही दी है परन्तु उसने इस सिद्धान्त का खडन भी नही किया है। पश्चिमी देशो के वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक इस सम्बन्ध में अनुसधान कर रहे हैं, और वहा पर इस सम्बन्ध मे बहुत सा साहित्य भी प्रकाशित हो चुका है और हो रहा है। आज

बहुत से उच्च कोटि के वैज्ञानिक आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नि:संकोच स्वीकार करने लगे हैं।*

अन्त मे इस सम्बन्ध मे हम बौद्ध ग्रन्थों से कुछ उद्धरण देते हैं।

(मज्झिम निकाय, देवदह सुत्तन्त. ३-१-१)

एक समय महात्मा बुद्ध शाक्यो के देवदह निगम में विहार करते थे। उस समय उन्होने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया और उनसे निगठ नातपुत्त (भगवान महावीर) के सिद्धान्त पर चर्चा की। महात्मा बुद्ध ने कहा, "मेरे एक प्रश्न के उत्तर मे निगठो (भगवान महावीर के अनुयायी मुनि) ने मुझसे कहा, 'आवुस! निगठ नातपुत्त सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, अखिल ज्ञान दर्शन को जानते हैं। चलते, खड़े रहते, सोते, जागते सर्वदा उन्हें ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे ऐसा कहते हैं, 'आवुसो निगठो! जो तुम्हारे पूर्वकृत कर्म हैं, उन्हें इस कड़वी दुष्कर तपस्या से नष्ट करो। इस समय काय, वचन व मन से तुम सवृत्त हो, यह तुम्हारे भविष्य के पाप का अकारक है। इस प्रकार प्राचीन कर्मों की तपस्या से समाप्ति होने पर व नये कर्मों के अनागमन से भविष्य में तुम अनास्रव हो जाओगे। भविष्य में अनास्रव होने से क्रमश कर्म-क्षय, दुखक्षय, वेदनाक्षय और सभी दुख निर्जीर्ण हो जायेंगे।" इतना वर्णन करके महात्मा बुद्ध भिक्षुओ से कहते हैं "यह सिद्धान्त हमे रुचिकर लगता है। इससे हम सतुष्ट हैं।"

* टिप्पण : इस विषय पर हमारे द्वारा प्रकाशित "सच्चे सुख का मार्ग" नाम की पुस्तक का अवलोकन करें जो हमसे नि:शुल्क प्राप्त कर सकते हैं।—प्रकाशक

(यहां पर महात्मा बुद्ध ने भगवान महावीर के सर्वज्ञ होने का प्रतिवाद नहीं किया है—लेखक)

(मज्झिम निकाय, चूल दुक्खक्खन्ध सुत्तन्त, १-२-४)

एक समय महात्मा बुद्ध शाक्य देश मे कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम मे विहार करते थे। महानाम शाक्य महात्मा बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। महात्मा बुद्ध ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—

" महानाम! एक बार मैं राजगृह के गृधकूट पर्वत पर विहार कर रहा था। उस समय बहुत सारे निगठ (जैन साधु) ऋषिगिरि की कालशिला पर खडे रहने का व्रत ले, आसन छोड, उपक्रम करते थे। वे दु खद, कटु व तीव्र वेदना झेल रहे थे। मैं सन्ध्याकालीन ध्यान समाप्त कर, एक दिन उनके पास गया। मैंने उनसे कहा "आवुसो! निगठो, तुम खडे क्यो हो? आसन छोडकर दु खद, कटु, व तीव्र वेदना क्यो झेल रहे हो?" निगठो ने मुझे तत्काल उत्तर दिया—'आवुस! निगठ नातपुत्त (भगवान महावीर) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं। वे अपरिशेष ज्ञान दर्शन को जानते है। चलते, खडे रहते, सोते, जागते, सर्वदा उन्हे ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे हमे प्रेरणा देते हैं 'निगठो! पूर्वकृत कर्मों को इस कडवी दुष्कर क्रिया (तपस्या) से समाप्त करो। वर्तमान मे तुम काय, वचन, व मन से सवृत हो, अत यह अनुष्ठान तुम्हारे भावी पाप कर्मों का अकारक है। इस प्रकार पूर्वकृत कर्मों का तपस्या से अन्त हो जाने पर और नवीन कर्मों के अनागमन से तुम्हारा चित्त भविष्य मे अनास्रव होगा, आस्रव न होने से कर्म-क्षय होगा, कर्म-क्षय से दु खक्षय, दु खक्षय से वेदनाक्षय और वेदनाक्षय से सभी दुख नष्ट हो जायेंगे'।" ऐसा कहकर महात्मा बुद्ध

कहते हैं, "हमे यह विचार रुचिकर प्रतीत होता है, अतः हम इस क्रिया से सन्तुष्ट हैं।"

(यहा पर भी महात्मा बुद्ध ने भगवान महावीर की सर्वज्ञता का प्रतिवाद नही किया—लेखक)

बौद्ध ग्रथ "दीर्घ निकाय" के प्रथम भाग में लिखा है— "निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) सघ के नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थङ्कर हैं, बहुत मनुष्यो द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं। बहुत समय से साधुचर्या करते हैं और अधिक वय वाले हैं।"

"मज्झिम निकाय" भाग १ मे महात्मा बुद्ध कहते हैं कि "नाथपुत्र (भगवान महावीर) सब कुछ जानते हैं, समस्त पदार्थों को देखते हैं, उनका ज्ञान असीम है।"

"अगुत्तर निकाय" मे कथन है कि "निगठ नातपुत्त (भगवान महावीर) सर्वदृष्टा थे, उनका ज्ञान अनन्त था और वे प्रत्येक क्षण पूर्ण सजग व सर्वज्ञ रूप मे ही स्थित रहते थे।"

"सयुक्त निकाय" मे उल्लेख है कि "निगठ नातपुत्त (भगवान महावीर) यह बता सकते थे कि उनके शिष्य मृत्यु के उपरान्त कहाँ जन्म लेंगे ? विशेष मृत व्यक्तियो के सम्बन्ध मे जिज्ञासा करने पर उन्होने बता दिया कि अमुक व्यक्ति ने अमुक स्थान मे, अमुक रूप मे नया जन्म धारण किया है।"

बौद्ध विद्वान धर्म कीर्ति ने जैन तीर्थङ्करो की सर्वज्ञता को स्वीकार करते हुए "न्याय बिन्दु" नामक ग्रन्थ के अध्याय ३ में लिखा है—

"जो सर्वज्ञ या आप्त हुआ है, उसी ने ज्ञान आदि का उपदेश दिया है। जैसे ऋषभ, वर्द्धमान (महावीर) आदि।"

ऊपर लिखित तथ्यों पर यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम इसी निर्णय पर पहुचेंगे कि भगवान महावीर का सर्वज्ञ होना असम्भव नही है।

क्या भगवान महावीर पलायनवादी थे ?

कुछ तथाकथित आधुनिक विचारो के व्यक्ति भगवान महावीर को पलायनवादी कहते हैं। परन्तु यह उनका भ्रम है और सकुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। भगवान महावीर को पलायनवादी बतलाते समय उनकी दृष्टि मे आजकल के वे साधु होते हैं, जिनमे से अधिकाश ने अपने उत्तरदायित्वो से भागकर साधु का भेष धारण कर लिया है। परन्तु जब हम भगवान महावीर के जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो हमको पता चलता है कि भगवान महावीर को न तो कोई कष्ट ही था और न उनके ऊपर ऐसा कोई उत्तरदायित्व ही था, जिससे घबराकर उन्होने घर छोड दिया हो। उनके जीवन मे भी ऐसा कोई अवसर नही आया जब वे अपने किसी उद्देश्य मे असफल रह गये हो, जिससे निराश होकर उन्होने गृह त्याग किया हो। इसके विपरीत भगवान महावीर राजपुत्र थे, उनके माता पिता भी जीवित थे, तत्कालीन ऐसी कौन सी सुख व सुविधा थी, जो उनको प्राप्त न थी अथवा उनके इगित पर उनको उपलब्ध न हो सकती थी ? घर छोडकर जाने के बाद भी भगवान महावीर ने अपना जीवन स्वच्छन्दता से व्यतीत नही किया और न ही वन के फल-फूल खाकर अपनी क्षुधा मिटाई, अपितु उनको जब कभी भी भोजन की आवश्यकता होती थी वे मनुष्यो की बस्ती मे आकर शुद्ध अन्न व जल ग्रहण करते थे। जब उन्होने सम्पूर्णज्ञान (केवल ज्ञान)

प्राप्त कर लिया तब तो वे उपदेश देने के लिए नगरो व देहातो मे ही विहार करते थे।

हा ! भगवान महावीर सासारिक दु खो को देख कर व्याकुल अवश्य थे। वे जानते थे कि यह ससार दुःखो की खान है। इन्ही दुःखों से व्याकुल होकर वे उन दुःखों के कारण, उन दु खों को दूर करने के उपाय और शाश्वत सुख प्राप्त करने का मार्ग ढूढने निकले थे। वे उत्तरदायित्वो से भागे नही थे किन्तु उन्होंने तो एक महान उत्तरदायित्व को वहन किया था और फिर अपने सम्यक् पुरुषार्थ से उस उत्तरदायित्व को पूरा करने मे वे सफल भी हुए थे। उन्होने सच्चे, निर्बाध और अनन्त सुख का मार्ग प्राप्त कर लिया था। उन्होंने स्वय उस मार्ग पर चलकर अनन्त सुख प्राप्त किया और ससार को भी वह मार्ग दिखला गये। पलायन करने वाला व्यक्ति आराम और आलस्य का जीवन बिताना पसन्द करता है, परन्तु भगवान महावीर ने अपने महान उद्देश्य की सिद्धि के लिये बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की थी।

एक बात और भी है। भगवान महावीर सांसारिक दु खो से भयभीत अवश्य थे परन्तु वे अत्यन्त निर्भय थे। यही कारण है कि उन्होने न तो कोई शस्त्र धारण किया और न कभी अपने साथ कोई रक्षक ही रक्खा। इसके विपरीत वे तो अत्यन्त अपरिग्रही (दिगम्बर) होकर निर्जन और घनघोर बनो में अपनी साधना मे लीन रहते थे। उन्होने तो सर्वोच्च त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया था। अतएव इन सब वास्तविकताओ को दृष्टि मे रखते हुए भगवान महावीर के ऊपर पलायनवादी होने का आक्षेप करना संकुचित दृष्टि का परिचायक ही समझा जायेगा।

जैन धर्म की प्राचीनता

जैन धर्म के सम्बन्ध मे कुछ व्यक्तियो के मन में यह भ्रम बैठा हुआ है कि जैन धर्म अपेक्षाकृत एक नवीन धर्म है और भगवान महावीर इसके सस्थापक थे। परन्तु यह बात तथ्यो के विपरीत है। यदि ये महानुभाव निम्नलिखित प्रमाणो पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो उनको अपनी भूल का ज्ञान हो जायेगा और वे वास्तविकता को जान जायेगे।

तथ्य यह है कि इस युग मे तीर्थंकर ऋषभनाथ जैन धर्म के सस्थापक थे, जिनका समय अब से करोडो वर्ष पूर्व था। उनके पश्चात् शत-सहस्रो वर्षों के बीच मे तेईस तीर्थंकर और हुए, जिन्होने अपने-अपने समय मे जैन धर्म का प्रचार किया। इन्ही तीर्थंकरो मे भगवान महावीर अन्तिम अर्थात् चौबीसवे तीर्थंकर थे। भगवान महावीर ने कोई नया धर्म नही चलाया, अपितु उसी जैन धर्म का पुनरोद्धार किया था, जो भगवान ऋषभनाथ के समय से चला आ रहा था। आज सभी इतिहासकार तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को एक ऐतिहासिक महापुरुष मानते है और वे एक मत से यह भी स्वीकार करते हैं कि भ० महावीर के जन्म से पहले भी भारतवर्ष में जैन धर्म प्रचलित था। इस तथ्य के पक्ष मे सबसे प्रबल प्रमाण बौद्धग्रथ 'मज्झिम निकाय महासीहनाद सुत्त १२' से मिलता

है। जब महात्मा बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए घर त्यागा था तब वह थोडे समय के लिए जैन मुनि की अवस्था में भी रहे थे। परन्तु जैन मुनि की कठिन चर्य्या पालन न कर सकने के कारण उन्होने कुछ समय पश्चात् वस्त्र धारण कर लिये थे। इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने स्वयं बौद्धग्रथ 'मज्झिम निकाय महा सीहनाद सुत्त १२' मे किया है :—

"मैं वस्त्ररहित रहा, मैंने आहार अपने हाथो से किया। न लाया हुआ भोजन लिया, न अपने उद्देश्य से बनाया हुआ लिया, न निमन्त्रण से जाकर भोजन किया, न बर्तन से खाया, न थाली मे खाया, न घर की ड्योढी में (within threshold) खाया, न खिडकी से लिया, न मूसल के कूटने के स्थान से लिया, न गर्भिणी स्त्री से लिया, न बच्चो को दूध पिलाने वाली से लिया, न भोग करने वाली से लिया, न मलिन स्थान से लिया, न वहा से लिया जहां कुत्ता पास खडा था, न वहा से लिया जहा मक्खियां भिन-भिना रही थी, न मछली, न मास, न सडा माड खाया, न तुस का मैला पानी पिया। मैंने एक घर से भोजन लिया सो भी एक ग्रास लिया, या मैंने दो घर से भोजन लिया दो ग्रास लिये। इस तरह मैंने सात घरो से लिया सो भी सात ग्रास, एक घर से एक ग्रास लिया। मैंने कभी दिन मे एक बार भोजन किया, कभी पन्द्रह दिन भोजन नही किया। मैंने मस्तक, दाढी व मूछो के केश लोच किये। उस केश लोच की क्रिया को चालू रक्खा। मैं एक बूद पानी पर भी दयालु रहता था। क्षुद्र जीव की हिंसा भी मेरे द्वारा न हो, ऐसा मैं सावधान था।"

"इस तरह कभी गर्मी, कभी ठंड को सहता हुआ भयानक वन में नग्न रहता था। मैं आग से तापता नहीं

था। मुनि अवस्था मे ध्यान मे लीन रहता था।"

यह सर्वविदित है कि उपरोक्त सारी क्रियायें जैन साधु की हैं। इसलिये इस तथ्य मे किसी प्रकार की शका नही है कि भगवान महावीर के जन्म के समय यहा जैन धर्म प्रचलित था। परन्तु वह शिथिल अवस्था मे था। भगवान महावीर ने उसमे नये सिरे से प्राण फूके।

जैन धर्म की प्राचीनता का प्रमाण हमे वेदो और पुराणो से भी मिलता है। वेद ससार के सबसे प्राचीन ग्रथ माने जाते हैं। इन वेदो मे ही कई स्थानो पर जैन तीर्थ-करो—यथा वृषभनाथ, सुपार्श्वनाथ और नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) के नाम आये हैं और उनका उल्लेख करके उनको नमस्कार किया गया है। इन तीर्थंकरो को 'जिन' तथा 'अर्हन्त' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। विद्वान पाठको के अवलोकन के लिए हम यहा पर कुछ वेद मन्त्रो का हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं।

"जिसमे बडे-बडे घोडे जुते हुए है ऐसे रथ मे बैठे हुए आकाश पथ पर चलने वाले सूर्य के समान विद्यारूपी रथ मे बैठे हुए अरिष्टनेमि का हम आह्वान करते हैं।"

—(ऋग्वेद अ० २ अ० ४ व २४)

"हे अरिष्टनेमि मेरी रक्षा करो "

—(यजुर्वेद अ० २६)

"अतिथि, मासोपवासी, नग्न मुद्राधारक भगवान् महावीर की उपासना करो, जिससे तीन प्रकार की अज्ञान अन्धकार रूपी रात्रि पैदा न हो।"

—(यजुर्वेद, अध्याय १९, मन्त्र १४)

"तू अखण्ड पृथ्वी-मण्डल का सार त्वचा स्वरूप है, पृथ्वीतल का भूषण है, दिव्य ज्ञान द्वारा आकाश को

नापता है। ऐसे हे वृषभनाथ सम्राट! इस संसार में जग-रक्षक व्रतो का प्रचार करो।" —(ऋग्वेद ३ अ० ३)

"भो यजमान लोगों! इस यज्ञ में देवों के स्वामी, सुख-सन्तानवर्द्धक, दुःखनाशक, दिव्य आज्ञाशाली, अपार ज्ञान-बलदाता वृषभनाथ भगवान् का आह्वान करो।"

—(ऋग्वेद ३६/ ४-६-८-६-२-२०)

"हे वृषभनाथ भगवन्! उदर तृप्ति के लिए सोमरस के पिपासु मेरे उदर मे मधुधारा सिंचन करो। आप अपने प्रजारूप पुत्रो को विषम संसार से तारने के लिए गाड़ी के समान हो।" —(ऋग्वेद ३८/ अ० ७-३-३-११)

"भो वृषभ देव आप उत्तम पूजक को लक्ष्मी देते हो। इस कारण मैं आपको नमस्कार करता हू और इस यज्ञ मे पूजता हू।" —४-१२२-५-२-२६

"जो मनुष्याकार अनन्त दान देने वाले और सर्वज्ञ अर्हन्त है वे अपनी पूजा करने वालो की देवों से पूजा कराते हैं।" —अ० ४ अ० ३ वर्ग ६

"भो अर्हन्तदेव! तुम धर्म रूपी वाणो को, सदुपदेश रूपी धनुष को, अनन्तज्ञानादि रूपी आभूषणों को धारण करने वाले हो। भो अर्हन्! आप जगत प्रकाशक केवल-ज्ञान को प्राप्त हो गए हो, ससार के जीवो के रक्षक हो, काम क्रोधादि शत्रु समूह के लिए भयकर हो तथा आपके समान कोई अन्य बलवान नही है।"

—(ऋग्वेद २-३३-१०)

"भाव यज्ञ (आत्मस्वरूप) को प्रकट करने वाले, इस संसार के सब जीवो को सब प्रकार से यथार्थ रूप से कह-कर जो सर्वज्ञ नेमिनाथ स्वामी प्रकट करते हैं, जिनके उप-देश से जीवों की आत्मा पुष्ट होती है, उन नेमिनाथ तीर्थंकर

के लिये आहुति समर्पण है।"

—(यजुर्वेद अ० ५, मन्त्र २५)

वेदो मे इसी प्रकार के और भी मन्त्र हैं।

अब हम विभिन्न पुराणो मे से कुछ श्लोको का हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं।

"कैलाश पर्वत पर भगवान् आदिनाथ (भगवान् ऋषभनाथ) ने युग के आदि मे मुक्ति प्राप्त की तथा रैवत पर्वत (गिरनार) पर जिनेन्द्र नेमिनाथ ने मुक्ति प्राप्त की। इसी कारण ये दोनो पर्वत ऋषियो के आश्रम बने और इसी कारण ये मुक्ति मार्ग के कारण माने गये है।"

—(महाभारत)

"रामचन्द्र जी कहते है कि 'मैं न तो राम हू, न मुझे कोई इच्छा है, न मेरा मन विषय भोगो मे लगता है। मैं तो जिन (जिनेन्द्र भगवान) के समान अपनी आत्मा मे ही शान्ति प्राप्त करना चाहता हू। ॥८॥"

—(योग वशिष्ट, वैराग्य प्रकरण, सर्ग १५)

"अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभ मे भरत का जन्म हुआ, जो कि अपने सौ भाइयो से बडा था। ऋषभदेव ने अपने बडे पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके स्वय प्रव्रज्या (साधुदीक्षा) ग्रहण की और तप करने लगे। भगवान ऋषभदेव ने भरत को हिमालय पर्वत से दक्षिण का राज्य दिया था, इस कारण उस महात्मा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पडा।"

—(मार्कण्डेय पुराण, अ० ५०—३६, ४०, ४१)

"भगवान ऋषभदेव से वीर भरत का जन्म हुआ, जो अन्य सौ पुत्रो से बडा था। भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पडा।" —(वायु पुराण अ० ३७—५२)

"नाभि राजा से मरुदेवी माता के ऋषभ का जन्म हुआ। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई और भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।"

—(अग्नि पुराण, १०/१०—११)

"पुरातन समय मे ऋषभ का पुत्र मुनि श्रेष्ठ भरत नाम का राजा था। उसके नाम से इस देश का नाम भारत कहा जाता है।"

—(नारद पुराण, पूर्व खण्ड, अ० ४८—५)

"सौ पुत्रो मे सबसे बडा पुत्र भरत ऋषभदेव जी से उत्पन्न हुआ। उस भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष कहा जाता है।"—(विष्णु पुराण, अश २—अ० १—३२)

"केवल ज्ञान द्वारा सर्वव्यापी, कल्याणस्वरूप, सर्वज्ञाता, यह वृषभनाथ जिनेश्वर मनोहर कैलाश पर्वत पर उतरते हुए ॥५६॥"

—(शिव पुराण)

"नाभिराजा ने मरुदेवी महारानी से मनोहर, क्षत्रियो में प्रधान और समस्त क्षत्रिय वश का पूर्वज ऐसा ऋषभ नामक पुत्र उत्पन्न किया। ऋषभनाथ से शूरवीर सौ भाइयो में सबसे बडा ऐसा भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषभनाथ उस भरत का राज्याभिषेक करके स्वय दिगम्बर दीक्षा लेकर मुनि हो गये। इसी आर्य भूमि में इक्ष्वाकु वश मे उत्पन्न नाभिराजा तथा मरुदेवी के पुत्र ऋषभनाथ ने क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म स्वय धारण किया और केवल ज्ञान पाकर उन धर्मों का प्रचार किया।"—(ब्रह्माण्ड पुराण, अ० १४, ५६, ६०)

"प्रत्येक युग मे द्वारकापुरी बहुत पुण्यवती दृष्टिगोचर होती है, जहाँ पर चन्द्र के समान मनोहर नारायण जन्म

लेते हैं। पवित्र रैवताचल (गिरनार पर्वत) पर नेमिनाथ जिनेश्वर हुए, जो कि ऋषियो के आश्रय और मोक्ष के कारण थे।"
—(प्रभास पुराण)

"शत्रुञ्जय तीर्थ का स्पर्श करके, गिरनार पर्वत को नमस्कार करके, और गजपन्था के कुण्ड मे स्नान कर लेने पर फिर जन्म नहीं लेना पडता अर्थात् मुक्ति हो जाती है। ऋषभनाथ सर्वज्ञाता, सर्वदृष्टा और समस्त देवो से पूजित हैं। उन निरञ्जन, निराकार, परमात्मा, केवलज्ञानी, तीन छत्र युक्त, पूज्य मूर्ति धारक, महाऋषि, ऋषभनाथ के चरण युगल को हाथ जोडकर हृदय से आदित्य आदि सुर, नर ध्यान करते है।"
—(स्कन्द पुराण)

(नोट—शत्रुञ्जय, गिरनार व गजपन्था ये तीनो स्थान जैनियो के तीर्थ क्षेत्र हैं।)

"अपना मनोवाछित कार्य सिद्ध करने के लिए गिरनार पर आया और वामन ने भगवान नेमिनाथ का नाम नेमिनाथ शिव रखा।"
—(स्कन्द पुराण, प्रभास खण्ड, अध्याय १६, वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य)

"श्री अर्हन्त देव के प्रसाद से मेरे हर समय कुशल है। वह ही जिह्वा है जिससे जिनेन्द्र देव का स्तोत्र पढा जाये, वह ही हाथ है जिनसे जिनेन्द्र देव की पूजा की जाये, वह ही दृष्टि है जिससे जिनेन्द्र देव का दर्शन किया जाये और वह ही मन है जो जिनेन्द्र देव मे लगा रहे।"
—(स्कन्द पुराण, तीसरा खण्ड (धर्म खण्ड), अ० ३८)

"नाभि का पुत्र ऋषभ और ऋषभ से भरत हुआ। उसी के नाम से यह देश भारत कहा जाता है।"
—(स्कन्द पुराण, माहेश्वर खण्डस्थ कौमार खण्ड ३७-५७)

"जो फल ६८ तीर्थों की यात्रा करने में होता है, वह फल आदिनाथ भगवान के स्मरण करने से होता है।"

—(नाग पुराण)

(ऋषभनाथ भगवान को प्रथम तीर्थंकर होने के कारण आदिनाथ भी कहते हैं।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभनाथ को आठवां अवतार बतलाकर भागवत पुराण के पाँचवें स्कन्ध के चौथे, पाँचवें और छठे अध्याय मे उनका बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त मोहनजोदारो (पाकिस्तान) की खुदाई से प्राप्त पाँच हजार वर्ष पुरानी मुद्राओ पर भगवान ऋषभदेव की मूर्ति तथा 'नमो जिनेश्वराय' आदि वाक्य अंकित हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत के आधार पर सूरसागर की रचना की थी। उसमे लिखा है :—

बहुरो रिषभ बडे जब भये। नाभि राज दे बन को गये ॥
रिषभ राज परजा सुख पायो। जस ताको सब जगमें छायो॥
रिषभदेव जब बन को गये। नवसुत नवौ खण्ड नृप भये ॥
भरत सो भरत खण्ड को राव। करे सदा ही धर्म अरु न्याव॥

—(सूरसागर, पंचम स्कन्ध)

ऊपर लिखित तथ्यो से यह प्रमाणित हो जाता है कि जैन धर्म और उसके प्रचारक तीर्थंकर इन वेदों व पुराणो की रचना काल से भी अत्यन्त प्राचीन हैं।

कुछ इतिहासकार तो जैन धर्म को इस ससार का सबसे प्राचीन धर्म और भगवान ऋषभनाथ को इस युग के सर्वप्रथम धर्म प्रचारक के रूप में स्वीकार करते हैं।

अनेको इतिहासकारो की यह निश्चित मान्यता है कि वेदो के रचनाकाल और आर्य सस्कृति से पूर्व भारत मे जो द्रविड सस्कृति फैली हुई थी वह वस्तुत श्रमण (जैन) संस्कृति ही थी।

प्राचीन काल मे जैन धर्म विदेशो मे भी फैला हुआ था। यद्यपि वर्तमान मे हमे विदेशो मे जैन धर्म का प्रभाव दिखलाई नही देता परन्तु इतिहासकारो को इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध हुए है कि ईसा से पूर्व जैन साधु (श्रमण) लका, इडोनेशिया, तक्षशिला, ईराक, श्याम, फिलस्तीन, मिस्र, यूनान, ईथोपिया, ओकसीनिया, केस्पिया, बल्ख, समरकन्द आदि देशो मे जैन धर्म तथा अहिसा का प्रचार करते रहते थे। सिकन्दर महान को अपने भारत पर आक्रमण के समय तक्षशिला के पास जो साधु मिले थे वह जैन मुनि ही थे। उन्हीं मुनियो मे से एक कल्याण (कोलिनोस) नामक मुनि को वह वापिस जाते समय अपने साथ अपने देश भी ले गया था। दुर्भाग्यवश रास्ते मे ही सिकन्दर की मृत्यु हो गयी थी। परन्तु कल्याण मुनि युनान पहुँचे थे और उन्होने वहाँ जैन धर्म का प्रचार भी किया था। परन्तु कालान्तर मे राजनीतिक परिस्थितियो के कारण इन देशो से जैन धर्म का सम्पर्क टूट गया और फिर जैन धर्म की कठोर चर्य्या का पालन न कर सकने के कारण वहा पर श्रमणो व जैन धर्म का अभाव हो गया। मध्य एशिया मे अब भी कही-कहीं ऐसे स्थान पाये जाते हैं जिनके निवासियो के आचार पर जैन धर्म का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

अहिंसा—एक विवेचन

भगवान महावीर ने अहिंसा पर सबसे अधिक बल दिया था। उन्होंने कहा था कि जो व्यक्ति सच्चा अहिंसक है, वह दूसरे किसी प्रकार के पाप भी कभी नही करेगा। अब हम अहिंसा पर तनिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

हिंसा की परिभाषा

अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा, जान बूझ कर तथा असावधानी से भी किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किमी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाना हिंसा है।

अहिंसा की परिभाषा

अपने मन, वाणी व शरीर के द्वारा जान-बूझ कर तथा असावधानी से भी, किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुचाना और इसी भावना के अनुरूप अपने नित्य कर्म बहुत सावधानीपूर्वक करना अहिंसा है।

हिंसा के भेद :—हिसा के मुख्यत दो भेद हैं।

(१) भाव हिंसा व (२) द्रव्य हिसा —

भाव हिंसा :—अपने मन मे स्वय को व अन्य किसी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट देने का विचार आना—भाव हिंसा है।

द्रव्य हिंसा :—अपनी वाणी व कार्य से, जान-बूझकर तथा असावधानी से भी, स्वय को व अन्य किसी

प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी
प्रकार का कष्ट पहुचाना—द्रव्य हिंसा है ।

इन दोनो भेदो मे भाव हिंसा ही प्रधान है। अपने मन में किसी भी प्राणी के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना आने मात्र से ही हम अपने शुद्ध भावो का घात कर लेते है और अपने शुद्ध भावो का घात ही हिंसा है। हमारे मन की दुर्भावना कार्यान्वित हो या न हो, और उससे किसी प्राणी को कष्ट पहुचे या न पहुचे, परन्तु इन दुर्भावनाओ के आने मात्र से ही हम हिंसा के दोषी अवश्य हो जाते है। इस लिए यदि हमको सच्चा अहिंसक बनना है तो हमारे मन मे भी किसी के प्रति किसी प्रकार की भी दुर्भावना नहीं आनी चाहिये।

भगवान महावीर ने हिंसा चार प्रकार की बतलाई है (१) सकल्पी, (२) विरोधी, (३) आरम्भी और (४) उद्योगी।

(१) **सकल्पी हिंसा** —जो हिंसा जान-बूझकर, सकल्प करके, योजना बनाकर की जाती है—वह सकल्पी हिंसा कहलाती है। जैसे मासाहार के लिए पशुओ, पक्षियो, मछ-लियो आदि जीवो का स्वय वध करना अथवा इनका मास खरीद कर खाना, धर्म के नाम पर अथवा अन्य किसी विशेष प्रयोजन से देवी-देवताओ को प्रसन्न करने के लिए पशुओ की बलि देना, अपने मनोरजन के लिए पशु-पक्षियो और मनुष्यो को आपस मे लडाना, शिकार खेलना, क्रोध से अथवा बदला लेने के लिए किसी को मानसिक और शारीरिक कष्ट पहुचाना, किसी के धन, स्त्री, सन्तान आदि का अपहरण करना, किसी को कटु वचन बोलना, मांस, रक्त, चमडा, हड्डी आदि प्राप्त करने व औषधि बनाने के

लिए किसी प्राणी को शारीरिक कष्ट देना या उसका वध करना, इत्यादि। इस प्रकार के सभी कार्य सकल्पी हिंसा के अन्तर्गत आते हैं।

यहाँ हम एक तथ्य और स्पष्ट कर दें। कोई भी कार्य, वह अच्छा हो या बुरा, नौ प्रकार से किया जाता है—यथा मन से, वचन से व शरीर से तथा स्वय करके, दूसरों के द्वारा कराकर और कोई अन्य व्यक्ति वह कार्य कर रहा हो तो उसका अनुमोदन करके। जैसे—

(१) अपने मन मे स्वय किसी जीव की हिंसा करने के भाव आने पर—

(२) अपने मन मे यह भाव आने पर कि किसी व्यक्ति से उस जीव की हिंसा करने के लिये कहे।

(३) अपने मन मे यह भाव आने पर कि कोई व्यक्ति आपही इस जीव की हिंसा कर दे तो बहुत अच्छा हो।

(४) अपने मुख से कहना कि मैं इस जीव की हिंसा करूँगा।

(५) किसी अन्य व्यक्ति से कहना कि इस जीव की हिंसा कर दो।

(६) कोई व्यक्ति किसी जीव की हिंसा करने को कह रहा हो तो उसको अपने वचनो द्वारा और भी प्रोत्साहित करना।

(७) स्वय जीव की हिंसा करना।

(८) किसी अन्य व्यक्ति से जीव की हिंसा कराना।

(९) कोई अन्य व्यक्ति किसी जीव की हिंसा कर रहा हो तो उसका अनुमोदन करना।

इस प्रकार कोई भी कार्य नौ प्रकार से किया जा

सकता है। इन नौ मे से किसी एक प्रकार से भी कार्य करने पर हम उस कार्य के कर्त्ता होने के उत्तरदायित्व तथा उसके अच्छे व बुरे फल से बच नही सकते।

(२) **विरोधी हिंसा :**—किसी आक्रमणकारी से अपनी, अपने परिवार और अपने आश्रितो की तथा अपने धन, धर्म, समाज और देश की रक्षा करते हुए, जो हिंसा हो जाती है, वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

यहाँ पर "हो जाती है" पद का विशेष महत्व है। सकल्पी हिंसा "की जाती है" अर्थात् जान-बूझकर, योजना बनाकर की जाती है, किन्तु विरोधी हिंसा "हो जाती है", अर्थात् किसी आक्रमणकारी से अपनी सुरक्षा करते हुए अचानक और कभी-कभी मजबूरी से हो जाती है। परन्तु आक्रमणकारी का प्रतिकार करते हुए हमारे मन मे केवल अपनी सुरक्षा करने की भावना ही होनी चाहिए, उसे किसी प्रकार का कष्ट देने, अनुचित रूप से सताने या उससे बदला लेने की भावना नही।

(३) **आरम्भी हिंसा** —प्रत्येक व्यक्ति को गृहस्थ मे रहते हुए बहुत से ऐसे कार्य करने ही पडते हैं जिनमे हिंसा हो जाना अनिवार्य है। जैसे, घर की सफाई करना, भोजन बनाना, खाद्य पदार्थों को साफ करना, कपडे धोना, मकान बनवाना इत्यादि। इन कार्यों से जो हिंसा हो जाती है उसको आरम्भी हिंसा कहते है। यहाँ पर भी हिंसा "हो जाती है," की नही जाती। इस प्रकार की हिंसा से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम जो भी कार्य करे बहुत सावधानी से करे। अपने मन मे सदैव यही भावना रखे कि मेरे द्वारा किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। हम अपनी आवश्यकताओ को यथा सम्भव कम करते रहें,

क्योकि जितनी हमारी आवश्यकताए कम होगी उतनी ही हमारी भाग-दौड कम होगी और उसी अनुपात से हिंसा भी कम होगी। हमको बेकार की और अनावश्यक वस्तुओ का सग्रह नही करना चाहिए। सफाई करते समय जीव-जन्तुओ की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए। भोजन की सामग्री भी थोडी-थोडी ही लानी चाहिए, क्योकि अधिक मात्रा मे सग्रह करने से उनमे चीटी, लट, सुलसुली आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। चटनी, अचार, मुरब्बे आदि भी थोडी मात्रा मे ही बनाए, क्योकि अधिक पुराने खाद्य पदार्थों मे सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए उनके सेवन से अधिक हिंसा होती है।

(४) **उद्योगी हिंसा** :—गृहस्थ मे रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपना, अपने परिवार और अपने आश्रितो का पालन-पोषण करने के लिये व जीविकोपार्जन के लिये कुछ न कुछ उद्योग व व्यवसाय करना ही पडता है। ये कार्य करने मे हिंसा हो जाना अवश्यम्भावी है। इस प्रकार की हिंसा को उद्योगी हिंसा कहते हैं। हमें ऐसे उद्योग व व्यवसाय तो करने ही नही चाहिए, जिनमे प्रत्यक्ष मे ही हिंसा होती है। जैसे माँस, मछली, अण्डे, मुर्गी, खाल, चमडे, हड्डी व उनसे बनी हुई वस्तुओ का व्यापार। ढलाई करने, भट्टा चलाने व अनाज पीसने के व्यवसाय भी ऐसे हैं, जिनमें हिंसा होने की बहुत अधिक सभावनाएं हैं। इसके विपरीत हमको ऐसे उद्योग व व्यवसाय करने चाहिए जिनमे हिंसा की सम्भावना कम से कम हो। यदि हम अनाज का व्यापार करते हो तो अधिक लाभ के लालच से अधिक अनाज इकट्ठा न करें, जिससे अधिक दिन पड़े रहने से उसमे जीव उत्पन्न न हो जाएं। हमे ऐसा साफ़-

सुथरा अनाज ही खरीदना व बेचना चाहिए, जिसमे जीव न पडे हो। यदि हम कागज का व्यापार करे तो कागज को थोडे-थोडे समय के बाद उलटते-पलटते रहे, जिससे उसमे दीमक न लगे और हम हिंसा व हानि दोनो से बचे रहे। यदि हमको नौकरी भी करनी पडे तो ऐसी जगह पर करें, जहा कार्य करते समय हिंसा की सम्भावना कम से कम हो।

साधुओं की अहिंसा (अहिंसा महाव्रत)

ऊपर बतलाई हुई चार प्रकार की हिंसा मे से सकल्पी हिंसा तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए त्याज्य होती है। जहां तक आरम्भी व उद्योगी हिंसा का प्रश्न है, गृहत्यागी साधु को ऐसे कार्य करने ही नही पडते, इसलिए साधुओ को आरम्भी व उद्योगी हिंसा भी छोडनी पडती है। रही विरोधी हिंसा की बात, तो साधुओ का किसी से बैर व विरोध नही होता। यदि कोई जान-बूझकर भी उनको कष्ट पहुचाता है तो वे उस कष्ट को, उस व्यक्ति के प्रति अपने मन मे किसी प्रकार की भी दुर्भावना लाए बिना, समतापूर्वक सहन कर लेते है। वे तो यही विचार करते रहते हैं कि उनको जो भी कष्ट मिला है, वह उनके अपने ही द्वारा किये हुए पूर्व कर्मों के फलस्वरूप मिला है। जो व्यक्ति कष्ट दे रहा है वह तो केवल निमित्तमात्र है। इसी कारण उनके मन मे किसी के प्रति विरोध की भावना नही आती।

इस प्रकार साधु पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन करते है। वे अपने पास मुलायम तन्तुओ की बनी हुई एक पीछी रखते हैं। जहा पर भी उनको बैठना या कोई वस्तु रखनी होती है वे उस स्थान को पीछी से साफ कर लेते हैं जिससे कि किसी जीव को कष्ट न पहुचे। वे सदैव हितकारी

वचन बोलते हैं। भोजन भी अल्प मात्रा में ग्रहण करते हैं जिससे कि उनका शरीर चलता रहे। वे भोजन में स्वाद व रुचि नही लेते।

ऐसे गृह-त्यागी व समताभावी साधु जब देखते हैं कि धर्म, समाज व देश पर कोई ऐसा सकट आया है जो उनके प्रयत्नो से दूर हो सकता है तो वे यथाशक्ति उसको दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इसके कारण यदि उनको अपना मुनिपद भी छोडना पडे तो वह उसे भी छोडने मे सकोच नही करते। पर ऐसा वे केवल विशेष परिस्थितियो में और केवल धर्म, समाज व देश के हित के लिए ही करते हैं, अपनी निजी आवश्यकता और स्वार्थ के लिए कभी नही करते।

गृहस्थ की अहिंसा (अहिंसा अणुव्रत)

गृहस्थी के लिए सकल्पी हिंसा तो त्याज्य है ही, बाकी तीन प्रकार की हिंसा से भी उसे यथाशक्ति बचना चाहिए। ऐसा नही समझना चाहिए कि इन तीन प्रकार की हिंसा से उसे पाप नही होता। पाप तो अवश्य होता है, पर वह उस व्यक्ति की भावना के अनुरूप ही होता है। सावधानी पूर्वक कार्य करते हुए और हिंसा के अवसरो से यथा सम्भव बचते हुए भी जो हिंसा हो जाती है, उसका दोष कम लगता है।

हिंसा के विविध रूप

कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि केवल किसी मनुष्य की हत्या कर देना ही हिंसा है, इसके अतिरिक्त और किसी भी कार्य से हिंसा नहीं होती। परन्तु यह केवल उनका भ्रम ही है। यदि हम हिंसा की परिभाषा और उसके विवेचन

पर ध्यानपूर्वक विचार करे तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे बहुत से कार्य-कलाप हिंसा के अन्तर्गत आ जाते हैं। उनसे बचने के लिए हमको बहुत सावधानी की आवश्यकता है। फिर भी अधिक स्पष्ट करने के लिए हम यहा सक्षेप मे हिंसा के विविध रूप दे रहे हैं।

(१) किसी भी प्राणी को कष्ट देना या उसका वध करना तो प्रत्यक्ष मे हिंसा है ही, मनुष्यो और पशुओ से उनकी शक्ति से अधिक कार्य लेना या उन पर अधिक बोझ लादना, उनको भूखा रखना, उनको आवश्यकता से कम भोजन देना, समय पर भोजन न देना, उनको अनुचित रूप से बाध कर रखना या अन्य किसी प्रकार के कष्ट देना, किसी से कोई कार्य करा कर उसको उचित पारिश्रमिक न देना, किसी के न्यायोचित अधिकारो का हनन करना, ये सब कार्य भी हिंसा की श्रेणी मे ही आते हैं। किसी को ऐसी सलाह देनी जिससे हिसा को बढावा मिले तथा किसी को हिसा करने के लिए उपकरण देना तथा प्रोत्साहित करना, अन्याय और बेईमानी करना या इनका समर्थन करना आदि भी हिसा ही है।

हम कभी-कभी ऐसे कार्य भी करने लगते है जिनसे हमारा प्रयोजन तो कुछ भी सिद्ध नही होता, परन्तु हम व्यर्थ मे ही हिसा के दोषी हो जाते है। जैसे मन मे किसी की जय तथा किसी की पराजय तथा अनिष्ट की कामना करनी, हवाई किले बनाना, घास-पेड-पौधे आदि उखाडना, जमीन खोदना, पानी फेकना, आग जलाना, बेकार मे ही उछल-कूद व भाग-दौड करना, किसी की ओर ककर-पत्थर फेकना, उथला हसी-मजाक करना और पशु-पक्षियों को परेशान करना आदि। जीवन की आवश्यकताओ की

पूर्ति के लिए तो हमें ऐसे कार्य लाचारी से करने ही पड़ते हैं और ऐसा करने मे हम अवश्य ही हिंसा के दोषी हो जाते है। परन्तु बिना प्रयोजन ऐसे कार्य करने से क्या लाभ ? इसलिए बिना प्रयोजन हमे ऐसे कोई भी कार्य नही करने चाहिए जिनमे हिंसा की सम्भावना हो।

कुछ व्यक्ति यह शका करते है कि पृथ्वी, जल व वायु मे जीव नही होता। परन्तु यह उनका भ्रम है। जल की एक बूंद को यदि हम बहुत शक्तिशाली सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र (Microscope) से देखे तो हमे उसमे बहुत से चलते-फिरते जीव दिखाई दे जायेगे। इन यन्त्रो के द्वारा दिखाई देने वाले जीवो के अतिरिक्त भी जल मे अन्य अनेको बहुत ही सूक्ष्म जीव भी होते हैं। इसी प्रकार यदि हम तनिक सी गीली भूमि को भी ध्यानपूर्वक देखे तो उसमे हमे बहुत से बारीक-बारीक जीव चलते-फिरते दिखाई दे जायेंगे। यदि सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र से देखे तो उस भूमि मे और भी बहुत से सूक्ष्म जीव दिखाई दे जायेंगे। पृथ्वी, जल व वायु मे जीवन होने का हम एक और प्रमाण देते हैं। जो भूमि जीवन सहित होती है उसमे ही वनस्पति उत्पन्न हो सकती है। जीवन रहित भूमि मे कोई भी वनस्पति नही उग सकती। यदि किसी भूमि को जला दिया जाये, तो वहा पर चाहे कितना ही पानी दिया जाये उस भूमि पर उपज नही हो सकती। यदि हम उस भूमि पर जीवन सहित नई मिट्टी डाल दे, या हल चलाकर नीचे से जीवन सहित नई मिट्टी निकाल लें तो उसमे फिर उपज होने लगेगी। रेगिस्तान की रेत जीवन रहित होती है, उसमे कितना ही पानी सींचा जाये परन्तु उसमें उपज नही होती। इसी प्रकार पानी में भी जीवन होता है। साधारण पानी से

सिंचाई करने पर उपज होती है। परन्तु यदि हम बहुत अधिक तापमान पर उबले हुए जल (Distilled water) से सिंचाई करें, तो भूमि चाहे कितनी ही उपजाऊ क्यो न हो उस जल से उपज नही हो सकती क्योकि वह पानी जीवन रहित हो जाता है। इसी प्रकार यदि हम उपजाऊ मिट्टी वाला कोई गमला साधारण जल से सीचकर हवाबन्द (Airtight) बोतल मे रख दे और उसकी सारी हवा निकाल दे तो उस गमले मे अकुर नही फूटेंगे, क्योकि वहाँ पर जीवन सहित वायु का अभाव है। इन प्रयोगो से यह सिद्ध होता है कि मिट्टी, जल तथा वायु मे भी जीवन होता है। बहुत सम्भव है कि जिस प्रकार श्री जगदीशचन्द्र वसु ने वैज्ञानिक यन्त्रो के द्वारा वनस्पति मे जीवन का होना सिद्ध कर दिया है उसी प्रकार कोई वैज्ञानिक पृथ्वी, जल तथा वायु मे भी जीवन होना सिद्ध कर दे।

हमको अपने रूप, ज्ञान, शक्ति, धन, कुल व जाति आदि का भी अहकार नही करना चाहिए। मन मे ऐसी भावनाओ के आने से हम अपने को ऊचा और दूसरो को नीचा समझने लगते हैं और अपने ऐसे व्यवहार से दूसरो के हृदयो को ठेस पहुचाते हैं। इसलिए एक अहिंसक को किसी प्रकार का भी अहकार नही करना चाहिए।

(२) झूठे, कठोर, निन्दा-परक, अप्रिय, कषाय-युक्त, आपस मे मनमुटाव व भ्रम पैदा करने वाले वचन बोलना भी हिसा ही है। क्योकि इनसे सुनने वाले व्यक्ति को मानसिक क्लेश तो होता ही है, कभी-कभी शारीरिक कष्ट भी पहुच जाता है। हमे ऐसे सत्य वचन भी नही बोलने चाहिए, जो सुनने वालो को अप्रिय लगें, जैसे किसी नेत्रहीन को अन्धा कहकर पुकारना। हमें ऐसे सत्य वचन भी

नही बोलने चाहिएं, जिनसे किसी प्राणी को कष्ट पहुंचने की सम्भावना हो, जैसे किसी शिकारी को यह बतलाना कि पशु अमुक दिशा में गया है।

(३) धन को मनुष्य का प्राण कहा है। धन की हानि होने पर मनुष्य को बहुत कष्ट होता है। इसलिए किसी का धन व अन्य वस्तुए चोरी करना या छल-कपट से अपहरण करना भी हिंसा ही है।

यदि भूल से किसी व्यक्ति की कोई वस्तु गिर जाये तो ऐसी वस्तु भी हमको नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि याद आने पर वह व्यक्ति उस वस्तु को अवश्य खोजेगा और न मिलने पर उसको कष्ट होगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति हमारे पास कोई वस्तु धरोहर के रूप मे रखकर भूल जाये, तो ऐसी वस्तु को भी अपनी मान लेना अनुचित है। हमको वह धरोहर वापिस कर देनी चाहिए। अपनी वस्तु को भूल जाने के कारण चाहे उस व्यक्ति को कोई कष्ट भले ही न हो, परन्तु हमारे अपने विचार तो खराब हो ही जाते हैं और हम सदैव यही इच्छा करते रहते हैं कि उस व्यक्ति को उस वस्तु की याद न आये तो अच्छा है।

(४) कम तोलना, कम नापना, बढिया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना और उसमे मिलावट करना, अधिक मूल्य पर चीजो को बेचना अर्थात् अनुचित लाभ कमाना भी हिंसा है। कम और घटिया वस्तु देने से लेने वाले व्यक्ति को आर्थिक हानि होती है। मिलावटी खाद्य पदार्थों के सेवन से स्वास्थ्य खराब हो जाता है और कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। मिलावटी औषधिया तो विष के समान ही होती हैं। उचित स्तर की वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु के प्रयोग से बहुधा भयंकर दुष्परिणाम घटित

हो जाते हैं। अधिकतर दुर्घटनाए तो केवल इसी कारण से ही होती हैं, जिनमे जन-धन की अपार हानि होती है।

एक बात और भी है। कम तोल कर, कम नाप कर, अधिक मूल्य लेकर और बढिया वस्तु मे घटिया वस्तु मिला कर बेचने से दुकानदार यह समझता है कि उसे अधिक लाभ मिल रहा है, परन्तु यह उसका भ्रम ही है। जब भी ग्राहक को वास्तविकता का पता चलता है वह उस दुकानदार से वस्तुए खरीदना छोड देता है और अपने परिचितो को भी उस दुकानदार की बेईमानी से अवगत करा देता है, जिससे कि उस दुकानदार की साख उठ जाती है और उसका व्यापार ठप्प पड जाता है।

इसके विपरीत जो दुकानदार ईमानदारी से व्यापार करता है उस पर ग्राहको का विश्वास बढता जाता है और धीरे-धीरे उसके व्यापार मे उन्नति होती जाती है।

बडी-बडी प्रसिद्ध मिलो का माल बन्द गठरियो और पेटियो मे केवल विश्वास के बल पर ही प्रतिदिन लाखो रुपये का बिकता है, क्योकि ग्राहक को यह विश्वास होता है कि इस गाठ अथवा पेटी मे वही वस्तु होगी, जिसका उस पर लेबिल लगा हुआ है। यदि ऐसा न हो और प्रत्येक व्यक्ति ही बेईमानी करने लग जाये तो ससार मे प्रतिदिन जो अरबो रुपये का व्यापार होता है वह बन्द हो जाये।

हम एक बात और स्पष्ट कर दे, मान लीजिये आप एक व्यापारी हैं। आपके पास अन्य वस्तुओ के साथ-साथ आपकी असावधानी से कोई घटिया वस्तु या खोटा सिक्का आ जाता है। आपको इस बात का पता भी नही चलता और साधारण रूप मे ही वह घटिया वस्तु या खोटा सिक्का आपके पास से निकल जाता है तो आपको कोई दोष नही

लगेगा। परन्तु यदि आपको इस तथ्य का पता चल जाता है कि वह वस्तु समुचित स्तर की नहीं है तथा यह सिक्का खोटा है फिर भी यदि आप उसको चलाने का प्रयत्न करते हैं तो आप अवश्य ही दोषी हो जाते हैं। क्योंकि उस समय आपके मन मे यह विकार आ जाता है कि ग्राहक इस घटिया वस्तु को तथा खोटे सिक्के को बिना देखे-परखे ही ले जाये। आप यह तर्क देकर अपने दोष से बच नही सकते कि हमारे पास भी तो यह घटिया वस्तु या खोटा सिक्का पूरे मूल्य मे ही आया था। हमने अनुचित लाभ के लालच मे अपनी ओर से यह घटिया वस्तु तथा खोटा सिक्का नही लिया। सोचने की बात तो यह है कि आपने अपनी असावधानी से अगर घटिया वस्तु ले ली है तो आपके ग्राहक इसका दण्ड क्यो भुगते ?

(५) किसी के साथ विश्वासघात करना, देश से द्रोह करना, पारिश्रमिक लेकर भी समुचित कार्य न करना, अपने कर्तव्य की अवहेलना करना, किसी की लाचारी का अनुचित लाभ उठाना, अनुचित किराया व अनुचित ब्याज लेना, शासन द्वारा लगाये गये करो की चोरी करना, शासन के नियमो को तोडना, झूठे पत्रक बनाना, घूस लेना व देना आदि कार्य भी हिंसा के ही रूप हैं।

इसी प्रकार एक वकील (न्याय के रक्षक) होते हुए झूठे मुकदमो की पैरवी करनी, तथा किसी को बेईमानी करने की सलाह देनी, एक न्यायाधीश होते हुए उचित न्याय न करना, तथा रिश्वत लेकर अथवा किसी के प्रभाव मे आकर न्याय के विपरीत निर्णय देना भी हिंसा की श्रेणी मे ही आते हैं। ऐसे कार्यों से प्रत्यक्ष मे हिंसा होती हुई दिखाई न देती हो, परन्तु इनसे समाज मे व देश मे अराज-

कता, अशान्ति व भ्रष्टाचार फैलता है, जिनके परिणाम सदैव खराब ही निकलते हैं।

(६) किसी के साथ बलात्कार या इसी प्रकार की अनधिकार कुचेष्टा करना भी हिंसा है। इससे पीडित व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुँचता है और कभी-कभी उसका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है। वेश्यागमन व पर-स्त्रीगमन जैसे जघन्य कार्य भी हिंसा की श्रेणी मे ही आते हैं। इन कार्यों से व्यक्ति का धन व स्वास्थ्य नष्ट होता है, परिवार मे कलह बढ़ती है, आपस मे वैमनस्य बढता है और कभी-कभी इसके फलस्वरूप हत्याएँ भी हो जाती है। ऐसे कार्यों से समाज मे व्यभिचार की प्रवृत्ति भी बढती है।

(७) अपनी तृष्णा पर अकुश न लगाकर आवश्यकता से अधिक धन और दूसरी चीजो का सग्रह करना भी हिंसा है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रतिदिन का अनुभव है कि अपनी आवश्यकता के अनुसार तो व्यक्ति ईमानदारी और उचित साधनो से कमा लेता है, पर अधिक कमाई के लिए वह अनुचित साधनो का सहारा लेता है। इस प्रकार अधिक धन सग्रह करने की प्रवृत्ति से अनुचित कार्यों को बढावा मिलता है और गरीबी-अमीरी का भेद बढता है, जिससे वर्ग-सघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त अनुचित साधनो से कमाया हुआ धन अधिकाश मे फिजूल खर्ची और अनुचित कार्यों—मद्य, मांस, व्यभिचार, जुए इत्यादि मे ही व्यय होता है। इसी कारण अमीरो की सन्तान बहुधा गलत रास्तों पर पड जाती है।

एक विचारक ने कहा है कि व्यक्ति की तृष्णा कभी पूरी नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति की तृष्णा का गड्ढा इतना

बडा है कि यदि उसमें तीनों लोकों की सम्पदा भी डाल दी जाये तो भी वह खाली ही रहता है।

यह जन साधारण के अनुभव की बात है कि धन-सम्पदा तो भाग्य से मिलती है। यदि आपके भाग्य में धन है तो वह अच्छे साधनो के द्वारा भी मिलेगा। यदि भाग्य मे धन नही है तो आप कितने ही अनुचित कार्य क्यो न कर लें आप निर्धन ही रहेंगे। हाँ, अनुचित कार्य करके अपने सिर पर पाप का बोझ अवश्य बढा लेंगे। इसका यह अर्थ नही कि हम भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर निठल्ले बैठ जायें। इसके विपरीत मनुष्य को सदैव ही पुरुषार्थ करते रहना चाहिये, पर उसके साधन समुचित हो, इसका बराबर ध्यान रखना चाहिए। समुचित साधनो द्वारा किये गये पुरुषार्थ का फल देर या सबेर अवश्य ही अच्छा मिलेगा।

एक बात और है। हमारा सबका मुख्य लक्ष्य सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत करना है। क्या धन-सम्पदा से हमे सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है ? धन से कुछ आरामदायक साधन अवश्य खरीदे जा सकते हैं, परन्तु सुख-शान्ति नही। आज भी कितने ऐसे धनवान है, जिनको सच्चा सुख और शान्ति नसीब है ?

बहुत से व्यक्तियो की यह आदत होती है कि वे दूसरों की देखा-देखी अनावश्यक वस्तुएँ जैसे कपड़े, जूते, फरनीचर आदि इकट्ठी करते रहते हैं। ऐसा करने में कुछ व्यक्तियो के पास तो वे वस्तुएँ फ़ालतू पडी रहती हैं, जबकि हजारों दूसरे व्यक्ति उनके अभाव में बहुत कठिनाई में जीवन बिताते हैं। फ़रनीचर आदि की सफ़ाई करने में सूक्ष्म जीवों की हत्या भी होती है। यदि आप भाग्यशाली हैं और धनवान

हैं तो अनावश्यक वस्तुएँ खरीदने के बजाय उस धन को दीन-दुखियो की सेवा व उनके अभावो को दूर करने मे लगायें। इससे उनके कष्ट दूर होगे और आप को शान्ति मिलेगी।

(८) सिगरेट, सिगार, बीडी, हुक्के आदि का सेवन भी हिंसा है। इनके तम्बाकू से जो विषैला धुआँ निकलता है वह इनके सेवन करने वालो के कलेजो को छलनी कर देता है। तम्बाकू मे निकोटिन, कार्बन मोनोक्साइड, अमोनिया, कार्बोलिक एसिड आदि बहुत से विष होते है, जो इनके सेवन करने वालो और उनके पास बैठने वालो तक मे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिए पश्चिमी देशो मे सिगरेट की प्रत्येक डिब्बी पर यह शब्द छपे हुए होते है **'यह विष है और इसके सेवन से मृत्यु हो सकती है।'** बहुत बार सिगरेट, बीडी, हुक्के से अग्निकाड भी हो जाते हैं, जिनके फलस्वरूप जन-धन की अपार हानि होती है।

इसके अतिरिक्त सिगरेट, बीडी का सेवन व्यक्ति के नैतिक पतन की प्रथम सीढी है। सर्व प्रथम किशोर बालक अपने मित्रो के आग्रह पर और अपने बडो की देखा-देखी और फैशन समझ कर सिगरेट, बीडी पीना आरम्भ करते हैं और फिर धीरे-धीरे चरस, गाजा, मदिरा आदि का सेवन भी आरम्भ कर देते हैं।

इसलिए एक अहिंसक व्यक्ति को इन पदार्थों के सेवन से दूर ही रहना चाहिए।

(९) मदिरा और दूसरी नशीली वस्तुओ का सेवन भी हिंसा को प्रोत्साहन देता है। नशीली वस्तुओ के सेवन से हमारे धन के साथ-साथ हमारा स्वास्थ्य भी नष्ट होता है।

ये हमारे विवेक को हर लेती हैं, जिससे हमको अच्छे व बुरे की पहचान भी नही रहती। अधिकतर हत्याये, बलात्कार व दूसरे जघन्य कुकृत्य मदिरापान की अवस्था मे ही किये जाते है। सडको पर अधिकाश दुर्घटनाएँ नशे की हालत मे गाडियाँ चलाने के कारण ही होती हैं।

मदिरा पीने वाले व्यक्ति का कितना चारित्रिक और नैतिक पतन होता है यह किसी से छिपा नही है। मदिरा के नशे मे व्यक्ति अपने देश के भेद शत्रुओ को दे देते है और देश के साथ गद्दारी करते है। मदिरा के सेवन से घर मे कलह पनपती है। जो पैसा परिवार के पालन-पोषण मे खर्च होना चाहिए था, वह मदिरा मे फुंक जाता है। मदिरा पीने से घर ही नष्ट नही होते, अपितु जिस राष्ट्र मे मदिरापान बढ जाता है उस राष्ट्र का भी पतन हो जाता है। इतिहास साक्षी है कि बडे-बडे साम्राज्यो और राष्ट्रो का पतन सुरा और सुन्दरियो के कारण ही हुआ है।

जिन देशो के नवयुवको मे मदिरापान बढता जा रहा है, वहाँ के विचारक इससे बहुत चिन्तित हैं और वहाँ के शासक नवयुवको मे मदिरापान को कम करने के लिये आवश्यक पग उठा रहे है।

इसके अतिरिक्त मदिरा बनाने मे भी अत्यधिक हिसा होती है। जिस वस्तु की मदिरा बनानी होती है, उसको सडाया जाता है। इससे उसमे असख्य सूक्ष्म और स्थूल जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। फिर उसका आसव खीचा जाता है। इस प्रकार मदिरा असख्य जीवो का कलेवर होती है। तैयार हो जाने के पश्चात् भी मदिरा मे प्रति समय असख्य सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति होती रहती है।

यहाँ पर एक तथ्य और भी ध्यान मे रखने योग्य है। मदिरापान का स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। चाहे वह ब्राण्डी हो, ह्विस्की हो, 'बीयर हो अथवा शराब हो, स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि मे ये सब विष ही हैं और शरीर के लिये सर्वथा विजातीय द्रव्य हैं। अत्यधिक मदिरापान के परिणाम तो सभी जानते हैं, परन्तु यदि ये विष थोडी मात्रा मे भी सेवन किये जाये तो भी हानिकारक ही होते हैं।

कुछ व्यक्तियो को यह भ्रम है कि मदिरा शक्तिवर्द्धक है और इसके पीने से मुख पर व आखो मे तुरन्त ही लाली आ जाती है। परन्तु यह लाली शक्ति की नही होती। वास्तविकता तो यह है कि इन विजातीय द्रव्यो के शरीर में जाते ही शरीर के कोषाणु सघर्षशील हो जाते हैं और हृदय द्रुत गति से रक्त फेकने लगता है। शरीर के इसी अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न लाली मुख पर तथा आँखो मे प्रकट होती है। अन्त मे सघर्षशील शरीर मदिरा पर विजय पाकर निढाल हो जाता है। उस निर्बलता को दूर करने के लिये व्यक्ति पुन मदिरा पीता है और यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है तथा सघर्षशील शरीर अपनी शक्ति खोता रहता है। धीरे-धीरे करके मदिरा उस पर हावी होती जाती है और इसका अन्तिम परिणाम किसी से छिपा हुआ नही है। मदिरा पीने वाला व्यक्ति अपने शरीर मे कितना विष डालता रहता है, इस तथ्य का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि एक औंस अल्कोहल (शराब) किसी स्वस्थ कुत्ते को खाली पेट पिला दी जाये, तो उसका जीवित रहना बहुत कठिन हो जाता है।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि जब प्राचीन काल से ही

मदिरा का सेवन प्रचलित रहा है, तब यह बुरी कैसे हो सकती है ? इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि प्रथम तो इस बात का ही निश्चय नहीं है कि प्राचीन काल मे प्रचलित सोमरस वास्तव मे मदिरा ही था अथवा अन्य कोई शक्ति-वर्द्धक पेय था। दूसरे यह कि यदि कोई बुराई प्राचीन काल से चली आ रही है तो क्या वह बुराई नही रहती ? क्या वह अच्छाई मे बदल जाती है ? यह सर्वविदित है कि विभिन्न धर्मों की प्राचीन काल की धार्मिक पुस्तकों में मदिरापान की सदैव निन्दा ही की गयी है। तथ्य यह है कि बुरी वस्तु चाहे वह नयी हो या पुरानी सदैव बुरी ही रहेगी, अतएव त्याज्य ही होगी।

(१०) शहद भी हिंसा के द्वारा ही प्राप्त होता है। वह मक्खियो द्वारा उगला हुआ रस होता है। इसको प्राप्त करने मे अनगिनत मक्खियो व उनके अण्डो का विनाश होता है। इसके पश्चात् भी इसमे असख्य जीवाणु उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिए एक अहिंसक व्यक्ति को शहद का सेवन भी नही करना चाहिये।

(११) रेशमी वस्त्रो का उत्पादन भी हिंसा के द्वारा ही होता है। रेशम प्राप्त करने के लिये असख्य रेशम के कीडो को पानी मे उबाला जाता है। इसलिए अहिंसक व्यक्ति को रेशम व रेशमी कपडों का प्रयोग नही करना चाहिये।

(१२) खाल व चमडा तो हिंसा के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। मोटा तथा मुलायम चमडा प्राप्त करने के लिये जीवित पशुओ के ऊपर उबलता हुआ पानी डाला जाता है और उनको बेंतों से पीटा जाता है। इसके पश्चात् जीवित अवस्था मे ही उनकी खाल खींच ली

जाती है। इस प्रकार चमडा प्राप्त करने के लिये पशुओ का बहुत ही निर्दयतापूर्वक बध किया जाता है।

इसी प्रकार बहुत मुलायम खाल प्राप्त करने के लिये गर्भिणी मादा पशुओ का बध करके उनके गर्भ के बच्चो को निकाल कर उनका बध किया जाता है, क्योकि इन बच्चो की खाल बहुत मुलायम होती है।

रग-बिरगी सुन्दर खाले प्राप्त करने के लिए कुछ व्यक्ति घडियालो और अन्य ऐसे ही सुन्दर खाल वाले और सुन्दर पख व बाल वाले पशु-पक्षियो को विशेष रूप से पालते है। जब उनके बच्चे बडे हो जाते हैं तो उनका बध करके उनकी खाल व पख उतार लेते है और इस प्रकार यह हिसा का ताण्डव-नृत्य चलता रहता है। एक अहिसक व्यक्ति को ऐसी वस्तुओ का प्रयोग भी नही करना चाहिये।

(१३) भोजन के लिए मास व अण्डे तो हिंसा के द्वारा ही प्राप्त होते है। इसी प्रकार मनोरजन के लिए शिकार करने मे भी प्रत्यक्ष ही हिसा होती है। (मासाहार पर हमने अगले पृष्ठो मे भी विस्तृत विवेचन किया है।)

(१४) जुआ खेलने से भी हिंसा को बढावा मिलता है। बहुधा देखा जाता है कि धन के लोभ मे जुआरी एक-दूसरे से मार-पीट करते है और कभी-कभी एक दूसरे की हत्या भी कर देते है। जुए मे जीता हुआ धन भी अच्छे कार्यों मे नही लगता। उसको अधिकाश मे मासाहार, मदिरापान व वेश्या-गमन जैसे जघन्य कार्यों मे ही व्यय किया जाता है। जुए मे जो हारता है वह तो बरबाद होता ही है, जीतने वाले को भी अन्तत बरबादी ही मिलती है।

(१५) आजकल कुछ औषधियाँ भी पशुओ के मास,

रक्त, जिगर व दूसरे अगो से बनाई जाती हैं, जैसे कि मछली के तेल, पशुओ के जिगर व दूसरे अगों से तैयार किये हुए इजेक्शन इत्यादि। बछडो को चेचक निकाल कर उनके जख्मो के रस से चेचक का टीका बनाया जाता है। इसी प्रकार घोडे को साप से डसवाकर उसके ज़हरीले खून से सर्पदश के इलाज के लिए टीका बनाया जाता है। एक अहिंसक व्यक्ति को ऐसी औषधियो का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त औषधियो पर अनुसन्धान करने वाले चिकित्सक खरगोशो, चूहो, बन्दरो, सूअरो, मेढको, मुर्गियों इत्यादि मूक प्राणियो पर अपने प्रयोग करते है। इन प्रयोगो से इन प्राणियो को अपार कष्ट होता है। प्रतिदिन हजारो पशु इस प्रकार के अनुसन्धानो के शिकार होते है। एक अहिसक व्यक्ति को इस प्रकार के निर्दयतापूर्ण अनुसन्धानो को कभी नही करना चाहिए।

कुछ व्यक्ति शाकाहारी होते हुए भी बीमारी की अवस्था मे पशुओ के अगो से बनी औषधिया तथा मास व अण्डे खाने लगते है। वे यह तर्क देते हैं कि जान है तो जहान है, हम अपनी खुशी से तो खा नही रहे है। डाक्टर ने हमे बतलाया है तो मजबूरी मे खा रहे हैं। परन्तु उनका यह तर्क उचित नही है। क्योकि मासाहार प्रत्येक दशा में बुरा है। फिर बुरा समय पडने पर ही तो मनुष्य की परीक्षा होती है। डाक्टर किसी को मास व अण्डे खाने को मजबूर नही करते। वे तो केवल सलाह भर देते हैं। यदि हमारी इच्छाशक्ति प्रबल है तो हम मास व अण्डे के बिना भी स्वस्थ हो सकते हैं। फिर, जो पोषक तत्व हमे मास व अण्डे से मिलते है उनसे अधिक पोषक तत्व हमे दूध, फल

व मेवों आदि से प्राप्त हो सकते हैं। आयुर्वेद मे ऐसी बहुत सी औषधियाँ है, जिनसे कठिन से कठिन रोग ठीक हो जाते हैं और हमको मासाहार की आवश्यकता भी नही पडती। फिर, इस बात का भी क्या विश्वास है कि मासाहार से हम नीरोग हो ही जायेगे ? और फिर क्या सभी मासाहारी व्यक्ति स्वस्थ ही रहते है ? प्राय. यह देखा जाता है कि मासाहारी व्यक्ति कई प्रकार के ऐसे रोगो से पीडित रहते हैं जो शाकाहारियो को नही होते। मुख्य प्रश्न तो यह है कि इस क्षणिक जीवन के लिए हम कितने जीवो की हिंसा करते रहेगे ? हमे यह समझ लेना चाहिए कि मासाहार प्रत्येक अवस्था में हिंसा है और वह हिंसा ही रहेगा चाहे वह लाचारी से किया जाये चाहे प्रसन्नतापूर्वक।

(१६) आजकल नकली मोती प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से सीपियो को पाला जाता है। उनको एक विशेष प्रकार की गोली खिलाई जाती है। कुछ दिनो मे उस गोली पर कोई पदार्थ इस प्रकार चढ जाता है जिससे वह मोती के समान दिखलाई देने लगती है। फिर सीप को काट कर वे मोती निकाल लिए जाते हैं। आजकल बाजार मे अधिकतर ऐसे ही मोती मिलते है। असली मोती भी सीपियो की हत्या करके ही प्राप्त होते हैं। इसलिए एक अहिंसक व्यक्ति को न तो मोती पहनने चाहिए और न दवाई के रूप मे उनका सेवन करना चाहिए।

ऊपर हमने जिन वस्तुओ का उल्लेख किया है, जिनका उत्पादन हिंसा के द्वारा होता है उनके सम्बन्ध मे यदि कोई प्रयोग करने वाले यह तर्क करने लगें कि हम तो पहले से ही उत्पादित वस्तुओ को खरीदते हैं, किसी से हिंसा करने

को नहीं कहते, इसलिए हम हिंसा के दोषी कैसे हुए ? तो उनका यह तर्क युक्तिसगत नही होगा। निर्माता केवल उन्ही वस्तुओ का उत्पादन करता है जिनकी ग्राहको मे माग होती है। यदि व्यक्ति इन वस्तुओ का प्रयोग नहीं करें, तो निर्माता इन वस्तुओ का उत्पादन कभी न करें। जैसे-जैसे इन वस्तुओ की माग बढती जा रही है, यह हत्याकाण्ड भी बढते जा रहे हैं। इसलिए इन वस्तुओ का प्रयोग करने वाले भी हिंसा के दोष से बच नही सकते।

(१७) अपने भोजन मे भी हमे इस प्रकार का विवेक रखना चाहिए कि जो भी वस्तु हम सेवन करे वह शुद्ध व सात्विक हो और उसमे किसी भी प्रकार के स्थूल व सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति न हुई हो। गोभी, गूलर, अजीर इत्यादि में और सड़ी-गली व काली सब्जियो मे तो प्रत्यक्ष ही जीव देखे जा सकते हैं। खमीर, पनीर, सिरके, आसव तथा बहुत दिनों के अचार व मुरब्बे आदि खाद्य पदार्थों मे भी सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। हमे ऐसे खाद्य पदार्थों के सेवन से यथासम्भव बचना चाहिए। भोजन का हमारे स्वास्थ्य व मन से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि हम शुद्ध व सात्विक भोजन करेंगे तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा, मन प्रसन्न रहेगा और हम बहुत से रोगो से भी बचे रहेगे।

आलू, कचालू, मूली, गाजर, जमीकन्द आदि जो सब्जिया जमीन के अन्दर पैदा होती हैं उनमे अन्य सब्जियो की अपेक्षा बहुत अधिक सूक्ष्म जीव होते हैं। इसलिए हमें यथासम्भव जमीन के ऊपर ही उगी सब्जियो का सेवन करना चाहिए।

(१८) खेती के विशेषज्ञ, खेतो को खराब करने वाले

कीडो, चूहो, पक्षियो, बन्दरो आदि को मारने की सलाह देते हैं। इस सम्बन्ध मे अधिकारिक रूप से तो मै कुछ नही कह सकता कि इस हत्याकाण्ड से खेती को दूरगामी लाभ होता है या नही, पर इतना अवश्य है कि यह हिंसा है और हिंसा का परिणाम कभी भी अच्छा नही होता। कई जगह तो खेती की रक्षा के लिए, इन कीडो व पशु-पक्षियो की हत्या करने के परिणाम खराब ही निकले हैं। क्योकि जब इन कीडे व पशु-पक्षियो को समाप्त कर दिया गया, तो अन्य प्रकार के खेती को हानि पहुचाने वाले कीडे, जिनको ये कीडे व पशु-पक्षी खा लिया करते थे, बहुत बढ गये और उनके कारण खेती को बहुत हानि हुई। जहाँ तक मैं समझता हू प्रकृति ने स्वय ही ऐसी व्यवस्था कर रखी है जिससे खेती को हानि न पहुचे। आजकल अनाज की फसलो और सब्जियो व फलो के वृक्षो को कीटाणुओ से बचाने के लिए उन पर कीटाणुनाशक औषधिया छिडकी जाती है। कुछ वैज्ञानिको ने खोज करके बतलाया है कि फसलो व वृक्षो पर कीटाणुनाशक औषधिया छिडकने से इन औषधियो के विषैले तत्व उन खाद्य पदार्थों को भी दूषित कर देते है और जो व्यक्ति ऐसे खाद्य पदार्थो का सेवन करते है उन पर भी इन विषैली औषधियो का बुरा प्रभाव पडता है। यद्यपि इन विषैले तत्वो की मात्रा बहुत कम होने से इनका तुरन्त ही कोई बुरा परिणाम दिखाई नही देता, परन्तु यह मन्द-गति विष (Slow Poison) के समान कार्य करते हैं।

(१९) हमे दूसरे के विचारो का भी आदर करना चाहिए और अपने हृदय मे भी सहनशीलता रखनी चाहिए। यदि दूसरा व्यक्ति किसी विषय पर हम से भिन्न विचार

रखता हो तो हमे उससे द्वेष नही रखना चाहिए, अपितु उसके विचारो को शान्ति और धैर्यपूर्वक सुनना व समझना चाहिए और अपने विचार भी उसको शान्ति से समझाने चाहिए। यह सम्भव है कि वह ठीक हो और हम ही भ्रम मे हो।

एक बात और है। प्रत्येक वस्तु मे भिन्न-भिन्न अपेक्षा से बहुत से गुण होते हैं। उनमे से कुछ गुण एक-दूसरे के विरोधी भी होते हैं। जैसे राम अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता है। इस प्रकार राम एक समय मे ही पिता भी है और पुत्र भी है। पाच इच की एक रेखा तीन इच की रेखा से बडी है, परन्तु वही पाच इच की रेखा सात इच की रेखा से छोटी है। इस प्रकार वह पाच इच की रेखा एक ही समय मे छोटी भी है और बडी भी। यदि कोई व्यक्ति यह हठ करने लगे कि राम केवल पिता ही है और रेखा केवल छोटी ही है तो यह उसका दुराग्रह ही कहा जायगा। इस सम्बन्ध मे एक हाथी और छ नेत्रहीनो की कहानी भी विचारणीय है। जिस नेत्रहीन ने हाथी के कान को छुआ था वह हाथी को पंखे के समान ही मानता था। जिस नेत्रहीन ने हाथी के पाव को छुआ था वह उसको एक स्तम्भ के समान ही मानता था। इस प्रकार हाथी के सम्बन्ध मे प्रत्येक नेत्रहीन की, उसके अपने द्वारा छुए हुए अग के अनुसार अलग-अलग मान्यता थी, जबकि वास्तव मे हाथी उन सब नेत्रहीनो की मान्यताओ को एक साथ मिलाकर देखने पर ही बनता था। हमको यह भी नही भूलना चाहिए कि हम भी उन नेत्रहीनों के समान अल्पज्ञ हैं। हम भी वस्तु को पूर्ण रूप से न जानकर केवल उसका थोडा सा भाग ही जानते है। इसलिए

हमको अपने थोडे से ज्ञान पर गर्व न करके दूसरो के विचारो का भी आदर करना चाहिए। "जो मेरा है वह सत्य है" इस प्रकार का दुराग्रह छोडकर हमको कहना चाहिए कि "जो सत्य है वह मेरा है।" ऐसे विचार रखने से तथा इसी प्रकार का व्यवहार करने से अहिंसा व शान्ति को बहुत बढावा मिलता है। इसके विपरीत केवल अपनी ही बात का दुराग्रह करने से द्वेष फैलता है, और हिंसा को बढावा मिलता है।

इस प्रकार ऊपर लिखे व ऐसे ही अन्य कार्यों से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा होती है व हिंसा को बढावा मिलता है। ये कार्य ऐसे नही हैं कि जिनके बिना हम अपना जीवन व्यतीत न कर सकें। हमे ऐसे कार्यों का यथासम्भव त्याग कर देना चाहिए। हम जो भी कार्य करे बहुत ही सावधानी व विवेकपूर्वक करे और अपने मन मे सदैव इस प्रकार की भावना रखें कि हमारे किसी भी कार्य से किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुचे।

सावधानी पूर्वक कार्य करने से अहिसा धर्म के पालन के साथ-साथ अपनी भलाई भी होती है। यदि हम देख-भाल कर चलेंगे तो इससे दूसरे जीवो की रक्षा तो होगी ही, हमारा स्वय का पैर भी किसी गड्ढे व कीचड मे नही धसेगा और पत्थर आदि से नही टकरायेगा। इसी प्रकार बिना देखे-भाले कपडे पहनने से हमे कई बार विषैले जीव-जन्तु काट लेते हैं। बिना देखे-भाले तथा रात्रि को भोजन करने से विषैले जीव-जन्तु व अन्य हानिकारक पदार्थ हमारे पेट मे चले जाते हैं, जिससे कि हमको कष्ट उठाना पडता है। हम प्रतिदिन समाचारपत्रो मे ऐसी असावधानी से हुई दुर्घटनाओ के समाचार पढते रहते हैं।

इसके साथ-साथ हमें अपनी आवश्यकताओं को भी सीमित रखना चाहिए और उन्हे यथासंभव घटाते रहना चाहिए। जितनी हमारी आवश्यकताए कम होगी, उतनी ही उनके लिए भाग दौड कम होगी और फलस्वरूप हिसा होने की सम्भावना भी कम होगी। आवश्यकताए कम करने का अर्थ यह नहीं है कि हम निठल्ले बैठे रहें, अपितु आवश्यकताए कम करने का अभिप्राय अपनी तृष्णा और अपनी लोभवृत्ति, अपनी जिह्वा की स्वाद-लिप्सा व बेकार का दिखावा कम करने से है। हमको अपना बचा हुआ समय दूसरो का उपकार करने, पठन-पाठन और चिन्तन व मनन करने मे लगाना चाहिए।

हिंसा और अहिंसा में अन्तर

हम पहले ही कह आए हैं कि हिसा और अहिसा का हमारे हृदय की भावनाओ से गहरा सम्बन्ध है। बहुत से कार्य ऐसे होते है कि जिनको देखने से यह लगता है कि ये हिसा के कार्य हैं, परन्तु वहाँ हिसा नही होती या बहुत कम होती है। दूसरी ओर कुछ ऐसे कार्य हैं जो देखने मे हिसायुक्त नही लगते, परन्तु वे हिसा की श्रेणी मे आते हैं। कुछ उदाहरणो से यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा।

एक शल्य चिकित्सक एक रोगी की शल्य-क्रिया कर रहा है। चिकित्सक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान व अभ्यास है। वह बहुत सावधानीपूर्वक अपना कार्य कर रहा है और उसकी यही भावना है कि रोगी स्वस्थ हो जाए। इतना सब होने पर भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। साधारण रूप से देखने पर शल्य-क्रिया के कारण रोगी को कष्ट होने तथा उसकी मृत्यु होने से यह कार्य हिसा का

दिखलाई देता है, परन्तु इसमे हिसा नाममात्र को भी नही है। क्योकि चिकित्सक का उद्देश्य रोगी को किसी प्रकार का कष्ट पहुचाना नही था, वरन् उसका उद्देश्य तो रोगी को ठीक करना ही था। ऐसी दशा मे न तो कोई व्यक्ति उस चिकित्सक को दोषी ठहराता है, न उसके प्रति किसी के मन मे कटुता आती है।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के फोडा हो रहा है। चिकित्सक उस फोडे को चीरा लगाता है, जिसके कारण उस व्यक्ति को बहुत पीडा होती है, परन्तु चिकित्सक के इस कार्य को हम हिसा नही कह सकते।

माता-पिता व गुरु आदि बालक को सही रास्ते पर लाने के लिए दण्ड देते है, इसी प्रकार एक न्यायाधीश एक अपराधी को दण्ड देता है। यद्यपि इस दण्ड के कारण उस बालक को और उस अपराधी को मानसिक व शारीरिक कष्ट पहुँचता है, परन्तु फिर भी माता-पिता व न्यायाधीश हिसक नही है, क्योकि उनके मन मे उस बालक व अपराधी के प्रति कोई दुर्भावना या बदला लेने की भावना नही है, अपितु वे तो उसकी भलाई ही चाहते है। यदि माता-पिता ऐसा नही करे तो वह बालक कुमार्ग पर पड जायेगा। इसी प्रकार यदि न्यायाधीश अपराधियो को दण्ड नही दें तो वे अपराधी और अधिक अपराध करेगे और समाज व देश मे अराजकता व अशान्ति बढेगी।

इसके विपरीत कोई व्यक्ति शस्त्र से हम पर वार करता है। उसका उद्देश्य हमारी हत्या करना अथवा हमे चोट पहुँचाना है। हम उसके वार से घायल हो या न हो—वह व्यक्ति हिसक है, क्योकि उसका अभिप्राय हमको कष्ट

पहुँचाना था। लौकिक नियमों के अनुसार भी वह व्यक्ति अपराधी माना जाता है।

एक वेश्या अथवा एक ठग किसी धनी व्यक्ति को विभिन्न प्रकार से फुसलाते है और उसको प्रसन्न करते हैं। परन्तु उनका यह कार्य सुखद होते हुए भी हिसा के अन्तर्गत ही आयेगा, क्योकि उस वेश्या व ठग का उद्देश्य किसी-न-किसी प्रकार से उस व्यक्ति के धन का अपहरण करना है।

एक शिकारी दिन भर शिकार की खोज मे फिरता रहता है, परन्तु उसके हाथ एक भी शिकार नही लगता। यद्यपि उस शिकारी के द्वारा किसी जीव को कोई भी कष्ट नही पहुँचा, परन्तु अपनी शिकार करने की भावनाओ और तदनुसार हीन आचरण करने के कारण वह हिसक ही माना जायेगा।

दूसरी ओर एक किसान खेत मे हल चला रहा है। उसके हल के नीचे आकर तथा उसके पैरो से कुचल कर बहुत से कीडे-मकोडे मर रहे हैं, परन्तु फिर भी वह किसान हिसक नही माना जाता, क्योकि उसका अभिप्राय किसी भी जीव की हत्या करने का नही है, अपितु अनाज उगाना ही है। इन जीवो की हत्या से उसका कोई प्रयोजन भी सिद्ध नही होता। इसका तात्पर्य यह नही है कि वह किसान बिल्कुल अहिसक है तथा उसको हिंसा का दोष नही लगेगा। उसे हिंसा का दोष अवश्य लगेगा, परन्तु यह उसकी भावनाओ और उसके काम करने के ढग के अनुसार ही लगेगा। जमीन पर चलते हुए कीडों-मकोडो को बचाने के लिये वह जितनी अधिक सावधानी बरतेगा, वह हिसा का उतना ही कम दोषी होगा।

एक सूत्र

हिंसा से बचने के लिये भारतीय मनीषियो ने एक सूत्र और भी दिया है ।

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।"

'दूसरे के द्वारा किया हुआ जो भी कार्य और व्यवहार आप अपने लिए अप्रिय समझते है, वह कार्य व व्यवहार आप दूसरो के प्रति भी नही करे ।'

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपको शारीरिक व मानसिक कष्ट न दे, आपको कटु वचन न बोले, तो आप स्वय भी दूसरो के साथ ऐसा व्यवहार न करें ।

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपके साथ धोखा, बेईमानी और विश्वासघात न करे तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करे ।

यदि आप यह चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपको मिलावटी व नकली वस्तु न दे, आपको कम तौल कर व कम नाप कर न दे, आपसे अनुचित लाभ न ले तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करे ।

यदि कोई व्यक्ति आपकी बहिन, बेटी की बेइज्जती और बेहुरमती करता है तो आपको बुरा लगता है तो आपको भी चाहिए कि दूसरो की बहिन-बेटियो को समुचित सम्मान दे ।

दूसरे के प्रति व्यवहार करते समय यदि हम अपने व्यवहार को इस कसौटी पर कस लें तो हम बहुत-सी अनावश्यक हिंसा से बच जायेंगे और इस ससार से बहुत सी बुराइया स्वयमेव ही दूर हो जायेंगी ।

विभिन्न भावनाओं के अनुसार विभिन्न फल

हम पहले भी कह चुके हैं कि हिंसा व अहिंसा का हमारे मन की भावनाओ से बहुत गहरा सम्बन्ध है। वास्तविकता तो यह है कि हमे कोई भी कार्य करना हो, पहले हमारे मन मे वह कार्य करने की भावना उत्पन्न होगी, उसके पश्चात् ही हम उस भावना के अनुसार कार्य करेंगे। विभिन्न कर्त्ताओ की विभिन्न भावनाए होने के कारण एक ही प्रकार के कार्य का भिन्न-भिन्न कर्त्ताओ को भिन्न-भिन्न फल मिलता है। नीचे दिये हुए उदाहरणो से यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा।

(१) दो व्यक्ति मिल कर हिंसा का कोई कार्य कर रहे हैं। उनमे से एक व्यक्ति तीव्र इच्छा से वह कार्य कर रहा है और दूसरा व्यक्ति अनिच्छा से उस कार्य मे सहायता कर रहा है, तो दूसरा व्यक्ति भी हिंसा के दोष से बच नहीं सकता। इतना अवश्य है कि पहले व्यक्ति की अपेक्षा दूसरा कम दोषी होगा।

(२) एक बधिक एक पशु की हत्या कर रहा है। कुछ दर्शक वहा पर खडे हुए उसको प्रोत्साहन दे रहे हैं। यद्यपि यहां पर हिंसा करने वाला एक ही व्यक्ति है, परन्तु प्रोत्साहन देने के कारण उन दर्शको को भी अपनी-अपनी भावनाओ के अनुसार हिंसा का दोष लगेगा।

(३) एक राजा अपनी सेना को दूसरे देश पर आक्रमण के लिए भेजता है, आक्रमण की सारी योजना भी वह स्वय ही बनाता है। यद्यपि ऊपरी तौर पर राजा ने हिंसा का कोई कार्य नही किया और सारा रक्तपात सेना द्वारा ही किया गया, फिर भी राजा उस हिंसा मे सबसे अधिक

भागी है, क्योकि सारा रक्तपात उसी की आज्ञा पर ही हुआ है। सैनिको को भी अपनी-अपनी भावनाओ के अनुसार हिसा का दोष लगेगा।

यहा पर सैनिको की भावनाओ का स्पष्टीकरण करना उचित रहेगा।

(अ) कुछ सैनिक तो यह सोचते होगे कि बहुत समय के पश्चात् यह युद्ध का अवसर आया है। हम विपक्ष के सैनिको को चुन-चुन कर मारेंगे, वहाँ के नागरिको का धन लूटेगे और उनकी सुन्दर महिलाओ का अपहरण करके ले जायेगे और उनको अपने घरो मे रखेंगे।

(ब) कुछ सैनिक यह सोचते होगे कि व्यर्थ मे रक्तपात करने से क्या लाभ ? विपक्ष के जो सैनिक हमारा सामना करेंगे हम केवल उन्ही से युद्ध करेंगे।

(स) कुछ सैनिक यह सोचते होगे कि हम तो अपने राजा के सेवक हैं, जैसी राजा ने आज्ञा दी है वैसा ही हमे करना पड रहा है, वरना विपक्ष के सैनिको से हमारी कोई शत्रुता तो है नही।

इस प्रकार प्रत्येक सैनिक की भिन्न-भिन्न भावनाएँ होगी और उनकी अपनी-अपनी भावनाओ के अनुसार ही उनको हिसा का दोष लगेगा।

(४) एक व्यक्ति के शरीर पर एक चीटी चढ जाती है और वह उसको काट भी लेती है। उस व्यक्ति की प्रतिक्रिया निम्नलिखित तीन प्रकार से हो सकती है।

(अ) वह व्यक्ति बिना विशेष ध्यान दिये उस स्थान को, जहा पर चीटी चल रही है, हाथ से मल देता है। इस प्रकार हाथ से मलने पर वह चीटी मर भी सकती है और बच भी सकती है।

(ब) वह व्यक्ति उस चींटी को जान-बूझकर मार देता है।

(स) वह व्यक्ति उस चीटी को सावधानीपूर्वक अपने हाथ से उठाकर किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ देता है।

उस व्यक्ति का पहले वाला कार्य हिंसा का है, क्योकि वह सावधानीपूर्वक नहीं किया गया। दूसरे प्रकार का कार्य घोर हिंसा का है, क्योकि उस व्यक्ति ने जान-बूझकर उस चीटी को मारा है। उसका तीसरे प्रकार का कार्य अहिंसा का है, क्योकि उसके मन मे चीटी की रक्षा के भाव हैं। यह सम्भव है कि हाथ से उठाते समय उस चीटी को कुछ कष्ट पहुच जाये या वह मर ही जाये, परन्तु फिर भी अपने दयायुक्त भावो के कारण वह व्यक्ति हिंसा का दोषी नही है।

(५) हमसे असावधानी मे ही कोई चिपकने वाली वस्तु बिना ढके ही रह जाती है। बिना ढकी होने के कारण उसमे कई मच्छर व मक्खिया गिर कर मर जाते हैं।

दूसरी अवस्था मे हम मच्छर व मक्खियो को मारने के लिये उनको मारने वाला चिपकने वाला पदार्थ जान-बूझकर रख देते हैं। उस पर भी कुछ मच्छर व मक्खी आदि चिपक कर मर जाते हैं।

इन दोनो अवस्थाओ मे लगभग एक-सी ही जीव हिंसा होती है। परन्तु हमारा पहले वाला कार्य केवल असावधानीवश हुआ (क्योकि हमारा अभिप्राय मच्छर व मक्खियो की हत्या करने का नहीं था) इसलिए इस हिंसा का दोष हमको लगेगा अवश्य, परन्तु कम लगेगा। लेकिन दूसरी अवस्था में हमे बहुत अधिक दोष लगेगा, क्योकि हमने मच्छर व मक्खियो को मारने के अभिप्राय से ही वह पदार्थ रखा था।

यहाँ यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि पहली अवस्था मे, जबकि हमारी असावधानी से उस पदार्थ में गिर कर मच्छर और मक्खी मर जाते हैं, यदि हमारे मन में जरा-सा भी यह विचार आया कि चलो अच्छा हुआ ये मच्छर व मक्खी अपने आप ही मर गये, हमने तो जान-बूझकर इनको मारा नही है, तो हम हिसा के दोषी अवश्य हो जायेगे। अत हमारे मन मे भी यह भावना नही आनी चाहिए कि कोई जीव अपने आप ही मर जाये, या कोई अन्य व्यक्ति उस जीव की हत्या कर दे, या अन्य किसी भी प्रकार से उसे कष्ट तथा हानि पहुँचा दे। ऐसे विचार मन मे आते ही, कुछ न करते हुए भी, हम हिंसा के दोषी हो जाते हैं।

एक शंका

यहा पर एक शका उठती है। एक बधिक नित्य प्रति पशुओ का बध करता है। एक मछियारा नित्य प्रति मछलिया पकडता है। एक शिकारी नित्य प्रति शिकार के द्वारा पशु-पक्षियो की हत्या करता है। इन व्यक्तियो के लिए ये नित्य के साधारण कार्य हैं। इनको इस बात का विचार भी नही आता कि वे इन जीवो की हत्या कर रहे हैं या इनके इन कार्यों से इन जीवो को तीव्र कष्ट हो रहा है। ऐसी परिस्थिति मे क्या वे व्यक्ति हिंसक कहलायेगे ?

यह ठीक है कि ये व्यक्ति साधारण रूप से यह कार्य कर रहे है। परन्तु साधारण रूप से यह हत्याकाण्ड करने से क्या उन पशु-पक्षियो, मछलियो आदि जीवो को कष्ट नही होता ? क्या ऐसे व्यक्ति यह नही जानते कि वे इन जीवों का जीवन समाप्त कर रहे हैं ? वास्तव मे नित्य प्रति

यही कर्म करते रहने से इन व्यक्तियो के संस्कार बहुत दृढ हो जाते हैं और वे इन जीवो के कष्टो के प्रति बिलकुल विवेकशून्य व असावधान हो जाते है। परन्तु अविवेक व असावधानी पूर्वक जो भी कार्य किया जाता है, वह हिंसा के अन्तर्गत ही आता है चाहे उससे हिंसा हुई हो या न हुई हो। किन्तु यहा पर तो प्रत्यक्ष ही हिंसा हो रही है तो ये व्यक्ति हिंसक क्यो न कहलायेगे ? जो व्यक्ति नित्य प्रति शराब पीते हैं, जो व्यक्ति नित्य प्रति जुआ खेलते हैं, जो व्यक्ति नित्य प्रति चोरी करते हैं, क्या वे अपराधी नही होते ? क्या वे कानून की दृष्टि मे दण्डनीय नही होते ?

बिल्कुल यही बात उन व्यक्तियो के सम्बन्ध मे है, जो खाद्य पदार्थों मे मिलावट करते हैं, नकली दवाइयाँ बनाते हैं, बढिया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देते हैं तथा अन्य ऐसे ही कार्य करते हैं जिनसे प्रत्यक्ष मे हिंसा होती नही दिखती। ये व्यक्ति जान-बूझकर कोई हिंसा का कार्य करना भी नही चाहते। ये तो केवल आर्थिक लाभ के लिए ऐसा करते हैं।

यह ठीक है कि इन व्यक्तियो के भाव हिंसा करने के नही है और न ही प्रत्यक्ष रूप से ये कोई हिंसा करते हैं। परन्तु जो अनैतिक कार्य ये कर रहे हैं उनका परिणाम क्या होगा ? ऐसे कार्यों के फलस्वरूप दूसरो को कष्ट होता है, उनका स्वास्थ्य खराब होता है और कभी-कभी इनके सेवन करने वालो की मृत्यु भी हो जाती है। घटिया वस्तुए जब अपेक्षित कार्य नही कर पाती तब दुर्घटनाए हो जाती हैं, जिनके फलस्वरूप जन व धन की अपार क्षति होती है। ऐसी अवस्था मे ऐसे अविवेक पूर्ण और अनैतिक कार्य करने वाले हिंसा के दोषी क्यों नही होंगे ?

अहिंसा का क्षेत्र

प्राचीन काल से ही सामाजिक, राष्ट्रीय व विश्व शाति का मूल आधार अहिसा ही रही है। आज के भौतिक युग मे जब अनेक प्रकार के घातक अस्त्र-शस्त्रो का आविष्कार हो गया है तब अहिसा का महत्त्व और भी बढ गया है। आज ससार के प्राय सभी राष्ट्रो के नेता यही बात कहते हैं कि हमारी आपस की प्रत्येक समस्या का समाधान शातिपूर्वक विचार विनिमय से हो न कि युद्ध से, और इस प्रकार वे अहिसा की आवश्यकता को स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु अहिसा के क्षेत्र के सम्बन्ध मे सबके विचार भिन्न-भिन्न हैं। कुछ व्यक्ति अहिसा का क्षेत्र केवल मनुष्य जाति तक ही सीमित मानते हैं। वे मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सब पशु-पक्षियो पर मनमाना अत्याचार करते है। ऐसे व्यक्तियो की धारणा है कि ससार मे जो भी वस्तुए हैं चाहे वे जानदार हैं या बेजान, वे सब मनुष्य के उपयोग और मनो-रजन के लिए ही है। अहिसा की रट लगाते हुए भी वे मांस भक्षण करते हैं, पशु-पक्षियो की खालो के और रेशम के वस्त्र धारण करते हैं और मनोरजन के लिए शिकार खेलते हैं।

कुछ व्यक्ति अहिसा का क्षेत्र केवल अपनी जाति व अपने राष्ट्र तक ही सीमित समझते हैं। दूसरे देश वालो की हत्या करने व दूसरे देशो को नष्ट करने मे वे कोई बुराई नही समझते।

कुछ देशो के शासक अहिसक होने का दम भरते हैं, परतु वे मासाहार को बढावा देते हैं। क़साईखाने खोलने के लिए करोडो रुपये व्यय करते हैं। भोजन के लिए मुर्गियो,

अण्डों व मछलियों का उत्पादन बढ़ाते हैं। शराब की बिक्री के द्वारा अपनी आय बढ़ाते हैं। क्या वे वास्तव में अहिंसक है ? सच्चा अहिंसक तो जान-बूझकर एक सूक्ष्म जीव को भी कष्ट नही देता। यदि देश मे अन्न की कमी है तो और अधिक भूमि मे खेती का प्रबन्ध करना चाहिए। सिंचाई की सुविधाएँ बढाई जानी चाहिए। बाढ़ो से करोड़ो रुपये की फसल नष्ट हो जाती है, इसलिए बाढ़ों की रोक-थाम का और उस पानी के उपयोग का प्रबन्ध करना चाहिए। केवल मासाहार को बढ़ावा देना ही अन्न की कमी का विकल्प नही है।

यदि हम ध्यान पूर्वक पशु-पक्षियो व छोटे से छोटे कीट पतगो का अध्ययन करे तो हम पायेंगे कि उनमें भी मनुष्य के समान ही जीवन है, शक्ति है और चेतना है। उनमे भी जानने की शक्ति है और वे भी हमारे ही समान सुख व दु:ख का अनुभव करते हैं। वे भी सुखपूर्वक जीना चाहते है और दु ख के कारणो से यथाशक्ति बचते हैं। यह अवश्य है कि उनमे मनुष्यो के बराबर ज्ञान व विवेक नही है और वे मनुष्य की तरह अपने सुख-दु:ख को व्यक्त नही कर सकते। मनुष्यो व पशुओ की शारीरिक बनावट में विशेष अन्तर न होने के कारण, वैज्ञानिक जितने परीक्षण करते हैं वे पहले पशुओ, यथा—चूहो, खरगोशो, कुत्तो, बन्दरो आदि पर ही करते हैं। जब इन पर परीक्षण सफल हो जाते हैं तब वे मनुष्यो पर उनका प्रयोग करते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति-जगत पर अपने परीक्षण किये थे और यह सिद्ध किया था कि वनस्पतियो में भी चेतना होती है, जैसे कि किसी विशेष प्रकार की ध्वनि करने से पेड-पौधे जल्दी बढ़ते हैं; इसके विपरीत

उनको अप्रिय लगने वाली ध्वनि करने से वे मुरझा भी जाते हैं। तात्पर्य यही है कि मनुष्यो मे और इन पशु-पक्षियो व वनस्पतियो मे समान चेतना होते हुए भी यही अन्तर है कि इन्द्रियो की शक्ति की अपेक्षा वे मनुष्य से निर्बल हैं और वे मनुष्य के समान अपने सुख-दु ख को व्यक्त नही कर सकते। इसलिए पशु-पक्षियो व वनस्पति को अहिंसा के क्षेत्र से दूर रखना हमारे भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण व निजी स्वार्थ-वृत्ति का ही परिचायक है। वास्तविकता तो यह है कि इस ससार मे जितने भी चेतन पदार्थ हैं चाहे वह वनस्पति हो चाहे सूक्ष्म कीट-पतग, चाहे पशु-पक्षी (मनुष्यो की तो बात ही क्या है) सभी हमारे अहिंसक व्यवहार के अधि-कारी हैं।

हिंसा के पक्ष में कुछ तर्क व उनका समाधान

(१) कुछ व्यक्ति यह कहते है कि समस्त ससार मे असख्य स्थूल जीवो के अतिरिक्त असख्यात सूक्ष्म जीव भरे हुए हैं। हमारे दैनिक जीवन मे इनका घात होता ही रहता है। इसलिए पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है, और जब अहिंसा का पालन करना असम्भव है तो अहिंसा पर इतना बल क्यो दिया जाये ?

यह ठीक है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है, परन्तु इसका अर्थ यह तो नही कि इसीलिए अनावश्यक हिंसा को भी प्रोत्साहन दिया जाये। हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम जो भी कार्य करे बहुत सावधानी पूर्वक करे और इस बात का सदैव ध्यान रखे कि हमारे किसी भी कार्य से किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। हमारे हृदय जीव-दया की

भावना से परिपूर्ण हो और हम यथा सम्भव अनावश्यक दौड़-धूप से बचते रहे। यदि हम इस प्रकार का व्यवहार करेंगे तो हम बहुत सी अनावश्यक हिंसा से बच सकेंगे।

जैन शास्त्रो के अनुसार प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जीविकोपार्जन के लिए मनुष्यो को असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि की शिक्षा दी थी। भगवान ऋषभदेव महान् ज्ञानी थे। वे जानते थे कि शस्त्रो का प्रयोग करने से व कृषि, उद्योग आदि से हिंसा हो जाना अनिवार्य है। प्रश्न यह है कि फिर भी उन्होने ऐसे हिंसक कार्यों की शिक्षा क्यों दी ? इसका उत्तर यही है कि उन्होने तत्कालीन समय की माँग को समझा था। उन्होने शस्त्रो का प्रयोग दूसरो को कष्ट देने के लिए नही, अपितु अपनी व अपने आश्रितो की रक्षा के लिए बतलाया था। कृषि की शिक्षा उन्होने इसलिए दी थी कि जिससे मनुष्य अन्न का उत्पादन करके अपना पेट भर सके। भगवान ऋषभदेव का उद्देश्य कृषि के द्वारा अनाज उत्पन्न करना था, न कि जीवो की हिंसा करना। उन्होने यही शिक्षा दी थी कि जो भी कार्य करो बहुत सावधानी पूर्वक और दया की भावना से करो।

(२) कुछ व्यक्ति यह प्रश्न करते हैं कि यदि हम अहिंसा का पालन करेंगे तो हम आक्रमणकारी का सामना कैसे करेंगे ? अपराधी को दण्ड कैसे देगे ? क्योकि ऐसा करने मे हिंसा हो जाना अवश्यम्भावी है।

इसका उत्तर हम पहले भी दे चुके हैं। जो व्यक्ति गृहत्यागी साधु हैं, उनको तो किसी प्रकार का भी प्रतिकार करना ही नही है, चाहे उनको कोई कितना ही कष्ट दे। परन्तु जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम का पालन कर रहे हैं उनका तो सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वे आक्रमणकारी का यथाशक्ति

प्रतिरोध करें। यदि आक्रमणकारी का प्रतिरोध नही किया जायेगा तो विदेशियो द्वारा उनका देश पददलित किया जायेगा। आक्रमणकारी का पूरी शक्ति से विरोध न करके अहिसा की रट लगाना निम्न श्रेणी की कायरता है और कायरता स्वय ही एक महापाप है। किसी पर अत्याचार करना हिसा है, पाप है, परन्तु बिना विरोध किये किसी का अत्याचार सहना तथा अत्याचारी के आगे आत्मसमर्पण कर देना महापाप है। क्योकि ऐसा करने से अत्याचारी का साहस बढता है और वह और भी अधिक अत्याचार करने लगता है। इससे देश तथा समाज की मर्यादा और व्यवस्था ही भग नही होती, वरन् महान क्षति भी होती है।

हमे आक्रमणकारी का हर हालत में विरोध करना है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नही है। यदि हममे इतना आत्मबल है कि हम शस्त्रो के बिना भी उसके सामने खडे रह सकते हैं और उसकी नैतिकता को जगा सकते हैं तो इससे अधिक अच्छा दूसरा उपाय नही है। परन्तु यदि हममे इतना आत्मबल नही है या आक्रमणकारी मे नैतिकता की कोई भावना ही शेष नही है तो हमको शस्त्रों के द्वारा ही उसका प्रतिकार करना होगा। लेकिन हमारे हृदय मे उसके प्रति किसी प्रकार की कटुता व अन्यथा कष्ट पहुचाने की भावना नही आनी चाहिए। हमारा लक्ष्य तो कम-से-कम बलप्रयोग द्वारा अपनी सुरक्षा करना होना चाहिए। अपनी सुरक्षा करते हुए उसको कोई हानि होती हो या कष्ट पहुचता हो तो इसमे हमारा कोई दोष नहीं है।

यहा पर एक प्रश्न यह उठ सकता है कि यदि आक्रमणकारी हमसे बहुत अधिक बलवान है और हम यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि हम उसका कुछ भी नही बिगाड़

सकते, अपितु उसका सामना करने पर अपनी ही हानि कर लेंगे तो ऐसी दशा में क्या किया जाये,?

इसका उत्तर यही है कि यदि सिद्धान्ततः आपका विरोध उचित है तो आपको हर हालत मे आक्रमणकारी का विरोध करना ही है, चाहे आपकी कितनी ही हानि होती हो। यदि आप अपने को निर्बल मानकर उसका प्रतिरोध नही करेंगे तो आप अहिंसक नहीं कायर होंगे। वास्तविक अहिंसक तो वह है जो अपने मे अपराधी को अथवा आततायी को दण्ड देने की पूरी क्षमता होते हुए भी उसको क्षमा कर देता है। इसके विपरीत निर्बल की अहिंसा व क्षमा लाचारी है, कायरता है, अहिंसा तो कभी भी नही है।

इसी प्रकार अपराधी को भी दण्ड देना चाहिये। किन्तु दण्ड देते समय हमारी भावना उससे बदला लेने की नही होनी चाहिये। हमारी भावना तो उसकी अपराधवृत्ति को दूर करने की होनी चाहिए। हमको उसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे कि उसके हृदय में किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न न हो, वह अपने अपराध पर स्वय ही लज्जित हो और भविष्य मे फिर अपराध न करे। सत्य तो यह है कि यदि अपराधी को दण्ड नहीं मिलता तो उसकी अपराध-वृत्ति बढती जाती है, जिसके कारण सारे समाज को कष्ट उठाना पड़ता है।

इस सम्बन्ध मे एक प्रश्न यह भी उठता है कि यदि कोई दुराचारी किसी महिला से दुराचार करने का प्रयत्न करे तो ऐसे समय में वह महिला क्या करे?

इस प्रश्न का समाधान भी ऊपर आ चुका है। उस महिला को किसी भी भय, धमकी अथवा शारीरिक कष्ट

से घबराकर आत्मसमर्पण नही करना चाहिये। उस महिला को दुराचारी का यथाशक्ति हर प्रकार से विरोध करना चाहिये। हाथो से, नाखूनो से, दातो से, चाकू से, जैसे भी सम्भव हो उसका विरोध करे। बहुधा दुराचारी व्यक्ति किसी प्रकार का प्रलोभन देकर, शारीरिक कष्ट का भय दिखलाकर, परिवार व समाज मे बदनामी का भय दिखलाकर, उस महिला के पति व सन्तान आदि की हत्या कर देने का भय दिखलाकर, महिलाओ से आत्म-समर्पण करा लेते हैं। परन्तु इस प्रकार आत्मसमर्पण करने से उस महिला का तो सर्वनाश होता ही है, दुराचारियो का साहस भी बढता है और वे और भी अधिक दुराचार करते हैं। यदि दुराचारी को यह पता चल जाये कि उसकी धमकियो का कुछ भी असर होने वाला नही है, और यदि वह दुराचार करने का प्रयत्न करेगा तो उसे भी कष्ट भोगना पड सकता है तो वह दुराचार से दूर ही रहेगा और दुराचार का प्रयत्न करने से पहले चार बार सोचेगा।

यहा पर यदि कोई व्यक्ति यह तर्क करने लगे कि धर्म की मान्यता तो यह है कि जो कोई व्यक्ति हमको कष्ट पहुचाता है, वह हमारे अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए पापो के फलस्वरूप ही पहुचाता है, इसलिये जब हमको हमारे पापो का ही दण्ड मिल रहा हो तो वह कष्ट हमे समता-पूर्वक सह लेना चाहिये। हम उसका प्रतिकार क्यो करे ?

यह ठीक है कि हमको जो भी कष्ट मिलता है वह हमारे अपने ही द्वारा पूर्व मे किए हुए पापो के फलस्वरूप ही मिलता है और इसीलिए गृहत्यागी साधु उस व्यक्ति का न तो प्रतिकार ही करते है, न उसके प्रति अपने मन मे कोई दुर्भावना ही लाते हैं। वह उस कष्ट को समतापूर्वक

सह लेते हैं। परन्तु गृहस्थों से हम इस प्रकार के व्यवहार की आशा नही कर सकते। जो व्यक्ति हम पर अत्याचार कर रहा है या हमें कष्ट पहुचा रहा है उसका अभिप्राय एक न्यायाधीश के समान हमको दड देने का नही होता, वह तो अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छाए पूरी करने के लिए हम पर, हमारे परिवार पर, हमारे आश्रितो पर, हमारे समाज पर तथा हमारे देश पर आक्रमण करता है और हमारी महिलाओ की बेइज्जती करता है। यदि उसको ऐसा करने से रोका न गया और वह अपने कुकृत्यो मे सफल हो गया तो उसका दु साहस और भी बढ जायेगा और फिर वह केवल हमको, व हमारे परिवार को ही नहीं वरन हमारे धर्म, हमारी सस्कृति, हमारे समाज और हमारे देश को भी नष्ट कर देगा। हमको तो उसका विरोध करना ही चाहिये। हा, हमारी सफलता और असफलता हमारे द्वारा पूर्व मे किये हुए कर्मों और वर्तमान मे किये हुए हमारे प्रयत्नो, दोनो पर निर्भर करती है।

कुछ व्यक्ति यह आक्षेप करते है कि अहिसा व्यक्ति को कायर बनाती है। परन्तु यह आरोप भी निराधार है। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अहिसा धर्म मे कायरता को कोई स्थान नही है। अहिसा अन्याय व अत्याचार करने से रोकती है, किन्तु यह कभी नही कहती कि तुम किसी अन्य का अत्याचार सहन करो। एक निडर व्यक्ति ही सच्ची अहिसा का पालन कर सकता है और जहा निडरता है वहा कायरता को कोई स्थान नही होता। जो व्यक्ति अपने विपक्षी को सामने देखकर उसका सामना करने के बजाय वहां से हट जाता है, चाहे वह मुँह से अहिसा की रट लगाता रहे, वह अहिसक नही कायर है।

एक सच्चा अहिंसक कर्म क्षेत्र से कभी मुंह नही मोडता, वह तो [.विपक्षी का सामना ही करेगा, चाहे वह आत्मबल से करे और चाहे शारीरिक व शस्त्रबल से, ऐसा करने मे चाहे उसको कितनी ही हानि व शारीरिक कष्ट क्यो न उठाना पडे। इसीलिए कहा जाता है कि अहिंसा कायरो का नही, वीरो का धर्म है।

(३) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि शेर, चीते, भेडिये, साप, बिच्छू, ततैया आदि जीव मनुष्य को कष्ट देते हैं, इसलिये ऐसे जीवो को मारने मे कोई बुराई नहीं है।

परन्तु इस तर्क का अनुमोदन नही किया जा सकता। तथ्य तो यह है कि सभी जीव मनुष्य से डरते हैं। वे उसी दशा मे मनुष्य पर आक्रमण करते हैं जब उनको यह भय होता है कि यह मनुष्य हमारा अनिष्ट करेगा अथवा उनको तीव्र भूख लग रही हो, अन्यथा वे जीव तो मनुष्य को देख-कर उससे छिपने का ही प्रयत्न करते हैं। साप, बिच्छू, ततैया आदि जीव भी तभी काटते हैं जब उनको छेडा जाता है या उनके ऊपर पैर पड जाता है। यदि हम ऐसे जीवो को यह बहाना बनाकर मारने लगें कि वे हिंसक हैं तो हम उनसे भी बडे हिंसक होगे। हमारा न्याय कौन करेगा? वे जीव तो केवल लाचारी मे ही मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, परन्तु मनुष्य तो अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए, अपने शरीर को सजाने के लिए और अपने मनोरजन के लिए मूक प्राणियो की सामूहिक हत्या करता रहता है। वे पशु-पक्षी तो केवल दूसरी जाति के जीवो की ही हत्या करते हैं और वह भी अपने प्रकृतिप्रदत्त स्वभाव के कारण; परन्तु मनुष्य तो अपनी तृष्णा और स्वार्थ के वश मनुष्यों—अपने बन्धुओ—की हत्या करने से भी नही हिचकिचाता।

एक बात और है, ये पशु-पक्षी तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए केवल अपने शारीरिक अगों का ही प्रयोग करते हैं, जो इनकी अपनी सुरक्षा के लिए इनको प्रकृति की देन हैं। परन्तु मनुष्य ने तो सामूहिक हत्या के लिये एक से एक बढ बढ़ कर घातक व मारक अस्त्र-शस्त्र बना लिये हैं, जिनसे वह क्षण भर मे ही सैकडों मील के क्षेत्र-फल के प्रत्येक जीवित प्राणी की हत्या कर सकता है। वैज्ञानिको ने जो उपकरण मनुष्यों की सेवा व सुरक्षा के लिए बनाये थे, उन उपकरणों का प्रयोग भी मनुष्यों की ही हत्या करने के लिए किया जा रहा है। फिर बतलाइये बडा हिंसक कौन हुआ ?

(४) कुछ व्यक्तियो की यह मान्यता है कि यदि कोई जीव भयंकर पीडा से छटपटा रहा हो तो उसका वध कर देना चाहिए, जिससे कि उसकी पीडा का अन्त ही जाये।

परन्तु यह मान्यता ठीक नही है। धार्मिक दृष्टि तो यह कहती है कि किसी भी जीव को जो कोई भी कष्ट मिल रहा है वह उसके अपने द्वारा पूर्व मे किये हुए पापों के फलस्वरूप ही मिल रहा है। यहाँ पर मृत्यु हो जाने से उस जीव के पाप नष्ट नही हो जाते। अपने पापों का फल तो उसको भोगना ही पडेगा, इसलिए इस योनि मे मृत्यु हो जाने से उसके कष्ट समाप्त नही होगे। हमारा कर्तव्य तो यह है कि कष्ट पा रहे जीवो की सेवा-सुश्रुषा करके उनको सुख व शान्ति पहुँचायें। हमारे प्रयत्नों से उन्हें सुख-शान्ति मिलती है या नही मिलती—यह हमारे वश में नहीं है। यदि हमारा कोई सम्बन्धी या अन्य कोई मनुष्य इस प्रकार पीडित हो तो क्या हम उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेंगे ?

(५) कुछ व्यक्ति यह तर्क करते हैं कि ससार में जीवन के लिए सघर्ष चलता रहता है। बाज़ की श्रेणी के बडे पक्षी अपने से छोटे पक्षियो को खाकर जीवित रहते हैं। छोटे पक्षी कीडे-मकोडो को खाकर जीवित रहते है। शेर, चीते, भेडिये आदि पशु हिरण, भेड, बकरी, इत्यादि पशुओ को खाकर जीवित रहते है। भेड, बकरी, गाय आदि पशु घास व फल-फूल (इनमे भी जीवन होता है) आदि खाकर जीवित रहते हैं। बडी मछलिया व मगरमच्छ आदि छोटी मछलियो को खाते है। छोटी मछलिया छोटे-छोटे कीडो व वनस्पतियो को खाती हैं। मनुष्य भी अन्न व फल आदि, जिनमे जीवन होता है, से ही अपना पेट भरता है। इस प्रकार जब सारे ससार मे जीवन के लिये हिंसा करनी ही पडती है तो फिर मनुष्य को ही अहिंसा का उपदेश देना क्यो आवश्यक है ?

ऊपर जिन पशु-पक्षियो के उदाहरण दिये हैं, वे स्वभाव से ही हिंसक हैं। प्रकृति ने ही उनको इस प्रकार का बनाया है। उनके अग-प्रत्यगो की बनावट ही इस प्रकार की है, जिससे कि वह अपने खाद्य पशु-पक्षियो को पकड सके व मार कर खा सके। उनके दात और आँते भी इसी प्रकार की होती हैं जिनसे कि वे कच्चा मास खा सके और पचा सके। इस प्रकार वे अपनी प्रकृति के अनुसार ही अपने से निर्बल प्राणियो को खाकर जीवित रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वय कोई खाद्य पदार्थ उत्पन्न भी नही कर सकते। फिर भी हिंसा उनका धर्म नही है। यदि हिंसा उनका धर्म होता तो उनको अपने स्वयं के चोट लगने का और वध होने का भय भी नही होता। वे अपनी जाति के जीवो और अपने बच्चो को भी मारकर खा जाते। परन्तु ऐसा

कभी नही होता। जब भी इन पशु-पक्षियों को चोट लगने का या मरने का भय होता है वे छिप जाते हैं। वे अपने छोटे बच्चो को प्यार करते है और उनका पालन करते हैं। यदि कभी अपने बच्चो पर कोई खतरा देखते हैं तो अपनी जान पर खेल कर भी उनकी रक्षा करते हैं। फिर वे हर समय तो हिसा नही करते। जब उनको भूख लगती है, या उन पर कोई आक्रमण करता है तभी वे हिसा करने को उद्यत होते हैं। इसके विपरीत मनुष्य प्राकृतिक रूप से हिसक नही है। उसके अग-प्रत्यग, दात व आत हिसा करने व मासाहार के उपयुक्त नही हैं। मनुष्य मे ज्ञान व विवेक है। वह अपने लिये खाद्य उत्पन्न कर सकता है। पशु तो अनादि काल से जिस अवस्था मे था उसी अवस्था मे है, परन्तु मनुष्य ने उत्तरोत्तर कितनी उन्नति की है। इसलिए मनुष्यो को और पशुओ को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

एक बात और है। आप ससार मे किसी भी पशु-पक्षी, कीट, पतग को देखे तो आप यही पायेंगे कि एक जाति के जीव अपना झुण्ड बना कर रहते हैं। कहीं भी किसी एक जाति के जीव को आप अकेले नही पायेंगे। एक अकेला जीव कभी जीवित नही रह सकता। सभी जीव परस्पर के सहयोग व उपकार से जीवित रहते हैं। और जहा पर जीवित रहने के लिए परस्पर सहयोग व उपकार की आवश्यकता है वहां पर ही अहिसा होती है। क्या हिसा का अर्थ परस्पर सहयोग व उपकार है ? यदि नही तो फिर इन प्राणियो का प्राकृतिक धर्म हिसा कैसे हुआ ?

यही बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है। कोई भी व्यक्ति

अकेले रह कर अपना जीवन व्यतीत नही कर सकता। उसको भी जीवित रहने के लिए परस्पर सहयोग व उपकार की आवश्यकता है। परन्तु एक बात मे मनुष्य पशु से भी नीचे गिरा हुआ है। प्रत्येक पशु-पक्षी अपनी जाति के जीवों के साथ सदैव प्रेम भाव रखता है। वह अपनी जाति के जीवो पर बिना विशेष कारण के द्वेष व आक्रमण नही करता। परन्तु मनुष्य अपने स्वार्थ के वश प्रायः दूसरे मनुष्य की बुराई ही सोचता है। इसीलिए अनादि काल से ससार मे युद्ध होते रहे हैं, जिनमे मनुष्य एक दूसरे का रक्त बहाते रहे है।

(६) कुछ व्यक्ति यह तर्क करते है कि यदि इन पशु-पक्षियो का बध नही किया जायेगा तो इनकी सख्या इतनी बढ जायेगी कि मनुष्यो को ससार मे रहने के लिए स्थान पाना कठिन हो जायेगा और उनको भोजन के लिए खाद्य पदार्थ मिलने भी दुर्लभ हो जायेंगे। इसलिए मनुष्य जाति की भलाई इसी मे है कि इन पशु-पक्षियो का बध किया जाता रहे।

जहा तक इन पशु-पक्षियो की सख्या मे बढोतरी का प्रश्न है उससे मनुष्य को भय नही करना चाहिए। प्रकृति इनकी सख्या पर स्वय ही नियन्त्रण रखती है। सर्दी, गर्मी, सूखा, वर्षा आदि प्राकृतिक कारणो से इनकी सख्या सीमित रहती है। इसके अतिरिक्त जितने पशु-पक्षी हैं वे सभी विशेष विशेष ऋतुओ मे प्रजनन करते हैं। इस कारण भी इनकी सख्या सीमित रहती है। वास्तव मे इन जीवो की संख्या बढ जाने का भय निराधार है और उनका बध करने का एक बहाना मात्र है। इसके विपरीत आज कल तो स्वय मनुष्य ही उनका मास प्राप्त करने के लिए कृत्रिम

उपायों से उनकी सख्या बढा रहा है। अपने स्वार्थ के लिए पहले तो पशु-पक्षियो की सख्या बढाना और फिर उनका घात करना कहाँ तक न्यायोचित और मानवीय है ?

समझ मे नही आता कि इन व्यक्तियो को ससार चलाने की जिम्मेदारी किसने सौंप दी है जिसको पूरा करने के लिए ये इन दीन-हीन मूक पशु-पक्षियो का बध करने पर तुले हुए हैं ? यदि ये व्यक्ति मनुष्य जाति की भलाई ही करना चाहते हैं तो ऐसा करने के और भी बहुत से मार्ग है। क्या मनुष्य जाति को रोगो से छुटकारा मिल गया है? क्या अब कोई भी व्यक्ति अभाव के कारण दुखी नही है ? क्या अब मनुष्यो ने आपस मे युद्ध करना बन्द कर दिया है ? क्या अब मनुष्य आपस मे प्यार से रहने लगे हैं ? क्या अब ससार का कोई भी व्यक्ति निरक्षर नही रहा है ? मनुष्य के सामने अभी ऐसी अनेको समस्याए हैं, जिनका समाधान होना अभी बाकी है। अत जो सज्जन मनुष्य जाति की भलाई ही करना चाहते हैं वे इन मूक पशुओ की हत्या करने की बजाय अपना समय मनुष्यो के दु ख-दर्द दूर करने मे लगाये।

इसी प्रकार कुछ व्यक्ति बूढी गाय, भैसो और बैलो की हत्या करने की वकालत करते हुए कहते हैं कि इन निकम्मे पशुओ को खिलाने की बजाये इनकी हत्या करके इनका मास खाना आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद है।

परन्तु यह दृष्टिकोण ठीक नही है। इन पशुओं का भोजन अधिकाश मे घास, पात, फलों के छिलके आदि ही होता है, जिससे मनुष्यों के खाद्य पदार्थों मे कोई कमी नही आती। और फिर वे अपने ऊपर हुए खर्च के लगभग बराबर ही गोबर के रूप मे हमें खाद दे देते है। अतः इन

पशुओ को पालने मे कोई विशेष आर्थिक हानि नही होती।

एक बात और भी है। क्या यह हमारी कृतघ्नता नही होगी कि जो पशु अपने जीवन भर हमे दूध देते है, हमारी फसल के लिये खाद देते है, हमारे खेतो मे हल चलाते है, हमारा बोझा ढोते हैं तथा मरने के पश्चात् भी हमे अपना चमडा और हड्डिया आदि देते है, उन पशुओ की, बूढा व अशक्त होने पर, हम हत्या कर दे ?

'इन बेकार पशु-पक्षियो का बध करके ही मनुष्य की भलाई की जा सकती है' यह तर्क देकर जो आज इन जीवो की हत्या की जा रही है वही तर्क देकर कल मनुष्यो की भी हत्या करना आरम्भ हो जायेगा। फिर हम अपने बूढे व अशक्त माता-पिताओ को भी बेकार समझ कर उनका बध करने लगेगे। इस स्वार्थवृत्ति का अन्त कहा होगा ?

(७) कुछ व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि मनुष्य जाति की उन्नति के लिये युद्ध अनिवार्य है। युद्धो मे प्रयोग के लिए मनुष्य नित्यप्रति नये-नये अस्त्र-शस्त्र बनाता है और अन्य उपयोगी आविष्कार करता है। यदि युद्ध न हो तो मनुष्य का मस्तिष्क कुण्ठित हो जाये और वह शत्रु को नष्ट करने और अपनी रक्षा करने के लिए नये-नये साधनो का आविष्कार करना छोड दे। युद्ध मे रक्तपात होता है और उस रक्तपात के लिए अभ्यस्त होने के लिए इन पशु-पक्षियो का बध करते रहना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वे यह भी तर्क देते हे कि बिना रक्तपात के हम अपनी, अपने आश्रितो की और अपने देश की रक्षा भी नही कर सकते। उनकी मान्यता है कि लडाकू व हिसक जातिया सदैव स्वाधीन रहती है और उन्नति भी करती है।

परन्तु इन व्यक्तियो के ये विचार ठीक नही हैं।

अनादिकाल से ही मनुष्य किसी-न-किसी कारण को लेकर आपस मे युद्ध करते आये है। इन युद्धो मे जन-धन की कितनी हानि होती है, इसकी कोई सीमा नही है। बीसवी शताब्दी के प्रथम अर्द्धशतक मे ससार ने दो महायुद्ध देखे हैं। छोटे-मोटे युद्ध तो निरन्तर चलते ही रहते हैं। इन युद्धो मे कितनी जन-धन की हानि हुई, इसका लेखा-जोखा लगाना असम्भव है। इतनी हानि और इतनी हिसा करने के पश्चात् भी इन युद्धरत राष्ट्रो को क्या मिला ? क्या इन युद्धो से उन राष्ट्रो की या ससार की कोई समस्या सुलझी ? तथ्य तो यह है कि इन युद्धो ने नई-नई समस्याए पैदा कर दी। इनके कारण अगणित स्त्रिया विधवा तथा बालक अनाथ हो गये। लाखो व्यक्ति विकलाग हो गये। लाखो परिवार शरणार्थी बन कर जगह-जगह की ठोकरे खा रहे है। विषैली गैसो के कारण सारा वायुमडल दूषित हो गया है। नये-नये रोग पैदा हो गये है। और फिर नैतिकता का जो ह्रास हुआ है वह अलग। इन युद्धो के ऐसे भयानक परिणाम देखकर ही League of Nations और United Nations Organisation का जन्म हुआ, जिससे राष्ट्रो के आपसी झगडे, युद्ध के माध्यम से नही, अपितु आपसी वार्तालाप द्वारा सुलझाये जा सके। आज भी ससार के नेता पुकार-पुकार कर कह रहे है कि युद्ध बन्द हो जाने चाहिए और शस्त्रो के उत्पादन पर पाबन्दी लगनी चाहिए। लेकिन फिर भी एक दूसरे पर अविश्वास के कारण प्रत्येक राष्ट्र अपनी सेना व शस्त्रो पर अपनी क्षमता से अधिक धन व्यय कर रहा है। सामूहिक रूप से मनुष्यो की हत्या करने के लिये नित्य नये-नये घातक शस्त्रो का आविष्कार हो रहा है। अर्थ-शास्त्रियो ने हिसाब

लगाया है कि इन युद्धो के माध्यम से एक व्यक्ति की हत्या करने के लिए जितना धन व्यय होता है, उतने धन से कई व्यक्ति सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकते है। इन युद्धो पर अपरिमित धनराशि व्यय होने के कारण जनसाधारण की उन्नति व सुख-सुविधा के अन्य अत्यावश्यक कार्य सम्पन्न नही हो पाते। यदि ससार के समस्त राष्ट्र सद्-भावना से रहे और युद्धो मे नष्ट होने वाले धन को जन-साधारण की भलाई के लिए व्यय करें तो कुछ ही दिनो मे ससार की कायापलट हो सकती है। दूसरे शब्दो मे, हम यह कह सकते है कि यदि अहिसा का सिद्धान्त सर्व-मान्य हो जाये और सब उसी के अनुसार चले तो यह ससार ही स्वर्ग बन जाये।

जहा तक युद्धो के फलस्वरूप उन्नति का प्रश्न है तो वह उन्नति केवल घातक व मारक अस्त्र-शस्त्रो के बनाने मे ही होती है। मनुष्य जाति को सुख-शान्ति पहुँचाने की दिशा मे कोई उन्नति नही होती। इसके विपरीत वैज्ञा-निको ने जिन साधनो का आविष्कार मनुष्य मात्र की भलाई के लिए किया था, इन युद्धो मे उन साधनों का प्रयोग भी मनुष्य की हत्या करने के लिए ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त सभी विद्वान यह मानते हैं कि कला-कौशल व सस्कृति की उन्नति शान्तिकाल मे ही होती है, युद्धो से तो वह नष्ट ही होती है।

इसी प्रकार जहा तक हिंसक व लडाकू जातियो के उन्नत व स्वाधीन होने की मान्यता है वह भी भ्रामक है। हिंसक व्यक्ति तो क्रूर व निर्दयी होता है, उन्नत व स्वाधीन नही। यदि इस तथ्य मे सच्चाई होती तो ससार का कोई भी राष्ट्र कभी परतन्त्र नही हुआ होता, क्योकि सैकडो

वर्षों से भारत के थोड़े से व्यक्तियों के अतिरिक्त ससार की कोई भी जाति अहिंसक नही है।

(८) कुछ व्यक्ति यह आक्षेप करते हैं कि अहिंसा की रट लगाने के कारण ही भारत सैकड़ो वर्षों तक परतन्त्र रहा। अत देश की स्वाधीनता व सुरक्षा के लिये अहिंसा की रट छोड़नी पड़ेगी।

इन व्यक्तियो का यह आक्षेप निर्मूल और तथ्यो के विपरीत है। यदि हम भारत के इतिहास पर दृष्टि डाले तो हम पायेंगे कि भारत पूर्ण रूप से अहिंसक कभी भी नही रहा। जब विदेशियो ने यहाँ पर आक्रमण किये उस समय यहा पर बहुत से छोटे-छोटे राज्य थे। इन राज्यो के शासक शिकार खेलते थे और मास खाते थे, फिर इनको अहिंसक कैसे मान लिया जाये ? वास्तविकता तो यह है कि वे शासक आपस मे वैमनस्य रखते थे, एक-दूसरे से युद्ध करते रहते थे और इस प्रकार अपनी शक्ति नष्ट करते रहते थे। इन भारतीय राजाओ को निर्बल समझ कर और यहा की अतुल धन-सम्पदा से आकर्षित होकर ही इन विदेशियो ने भारत पर बार-बार आक्रमण किये। इन भारतीय राजाओ ने कभी भी सगठित होकर इन विदेशियो का सामना नही किया। इसके विपरीत कई बार तो ऐसा भी हुआ कि इन्ही भारतीय राजाओ ने अपने किसी शत्रु भारतीय राजा पर आक्रमण करने के लिये इन विदेशियो को आमन्त्रित किया। आरम्भ मे तो वे विदेशी यहा की धन-सम्पदा लूट-लूटकर ले जाते रहे। परन्तु बाद में जो आक्रमणकारी आये, वे यही बस गये और साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से यहा के शासक बन गये। अत भारत की परतन्त्रता का मुख्य कारण अहिंसा नही, अपितु

यहा के राजाओ का आपस का वैमनस्य, एक-दूसरे से विश्वासघात, उनकी निर्बलता, कायरता और विलासिता थी। अहिसा धर्म कभी यह नही कहता कि आक्रमणकारी का सामना न करो और उसके सामने आत्मसमर्पण कर दो। अहिसा धर्म तो यह कहता है कि किसी पर अत्याचार करना पाप है, परन्तु किसी का अत्याचार सहना महापाप है।

यदि हम भारत के पिछले दो सौ वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डाले तो हमको विदित होगा कि जब अग्रेज भारत में आये थे तब यहा के अधिकाश शासक मुसलमान राजा व नवाब थे। यह सर्वविदित है कि मुसलमान अहिसा मे विश्वास नही करते, फिर वे मुसलमान राजा व नवाब परतन्त्र कैसे हुए ? उत्तर यही है कि अग्रेजो ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति अपनायी और उनकी यह कूटनीति पूर्णत सफल हुई। इसके अतिरिक्त वे मुसलमान शासक पूरी तरह से विलासी हो गये थे और अपना अधिकतर समय शासन के कार्यों मे लगाने के बजाय सुरापान व सुन्दरियो मे व्यतीत करने लगे थे। शासन वस्तुत उन वज़ीरो के हाथ मे था, जो स्वय शासक बनने के लिये षड्यन्त्र करते रहते थे। अग्रेजो ने ऐसे व्यक्तियो को अपना मुहरा बनाया और कूटनीति से धीरे-धीरे करके सारे भारत का शासन अपने हाथो मे ले लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की परतन्त्रता मे अहिसा का कोई हाथ नहीं था। इसके विपरीत पुराने इतिहासो और विदेशियो की भारत-यात्रा के वर्णनो से हमको विदित होता है कि प्राचीन काल मे यहा पर हिसा नाम मात्र को होती थी। यहां के निवासियो का चरित्र बहुत ऊचा था, बेईमानी व विश्वास-

घात का कही नाम भी न था। लोग अपने घरो मे ताले भी नही लगाते थे और प्रजा हर प्रकार से सुखी व सम्पन्न थी। यहा का कला-कौशल और सस्कृति आदि अधिकाश मे उसी समय की देन है।

भारत का और विशेषकर राजपूताने का इतिहास साक्षी है कि जब भी यहा के निवासियो ने विलासिता और अपने जीवन का मोह त्याग कर आक्रमणकारो का सामना किया तभी उन्होने आक्रमणकारियो के छक्के छुडा दिये और अपने से कई-कई गुनी बडी सेना को हराया।

अब से लगभग एक हजार वर्ष पहले भारत मे, विशेषकर गुजरात व दक्षिण मे, बहुत से जैन शासक हुए हैं। उन्होने शताब्दियो तक अपने राज्यो पर सफलतापूर्वक शासन किया और आक्रमणकारियो से अपने प्रदेश को सुरक्षित रक्खा। परन्तु जब उनकी शक्ति बिलकुल ही क्षीण हो गयी या आक्रमणकारी बहुत अधिक शक्तिशाली हुआ तब उन्होने युद्ध मे लडते-लडते अपने प्राण गवा दिये, परन्तु विदेशियो के सामने आत्मसमर्पण नही किया और न उनकी आधीनता ही स्वीकार की। इसी कारण इन राजवशो के नाम भी आज लुप्त प्राय हो गये हैं।

वर्तमान काल मे भी हम देखे तो इसी सत्य के दर्शन होगे। अमरीका जैसा विशाल, शक्तिशाली और धनवान देश एक छोटे से देश वियतनाम को नही झुका सका। क्योकि वियतनामी अपने प्राणो की परवाह न कर अपने देश के लिये लड रहे थे।

इसके साथ-साथ सन् १९४८ में उदय में आये छोटे से यहूदी राज्य इजराइल का उदाहरण भी हमारे सामने है। लगभग ३५ लाख की जनसख्या का यह छोटा सा देश

अपनी स्थापना के समय से ही ६ करोड की कुल जनसख्या वाले कई अरब राज्यो का सफलतापूर्वक सामना ही नही कर रहा अपितु उसने इन अरब राज्यो के बहुत से क्षेत्र पर अपना अधिकार भी कर रक्खा है। जबकि उसके पास सेना और शस्त्र अरब राज्यो की सम्मिलित सेना और शस्त्रो से बहुत कम हैं। यह सब वहा के निवासियो की देशभक्ति और बलिदान की भावना का ही तो परिणाम है।

इसी प्रकार जबसे भारत स्वतन्त्र हुआ है तबसे इस पर पाच बार आक्रमण हो चुका है। सन् १९६२ मे चीन ने भारत पर आक्रमण किया। भारत उस समय तक चीन को अपना मित्र समझता था और इसीलिए उसकी ओर से निश्चिन्त था। चीन ने इस भ्रम का लाभ उठाया और उस समय भारत को अपमान सहना पडा। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान ने भारत पर चार बार आक्रमण किया। हर बार उसके मासाहारी, हिंसक व क्रूर सैनिको ने आक्रमण करने मे पहल की, परन्तु हर बार पाकिस्तान को भारत की वीर सेना के आगे मुँह की खानी पडी। भारत की सेना मे मासाहारी भी हैं और शाकाहारी भी। भारत का कोई भी सैनिक पाकिस्तानी सैनिको जैसा क्रूर व निर्दयी भी नही था, फिर भी भारत के वीरो ने पाकिस्तान को नाको चने चबवा दिये। क्योकि भारत के वीरो ने किसी अन्य देश की भूमि हडपने के लिये आक्रमण नही किया था, अपितु वे तो अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जी-जान से लड रहे थे। उन्हे अपना देश व उसकी स्वतन्त्रता अपने प्राणो से भी अधिक प्यारी थी। इन युद्धो मे भारतीय वीरो ने जो बलिदान दिये हैं वे स्वर्णाक्षरो में लिखे जायेंगे।

कहने का तात्पर्य यही है कि कोई भी देश, जब तक

कि उस देश के निवासियो में और वहां की सेना में अपने देश पर मर मिटने की भावना है, केवल हिंसा से ही पराधीन नही किया जा सकता।

हम विश्व के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें विदित होगा कि भारत के अतिरिक्त ससार का कोई भी ऐसा देश नही है जहा पर अहिंसा का सिद्धान्त प्रचलित हो, परन्तु फिर भी समय-समय पर वे देश दूसरे देशो के आधीन रहे। अहिसा को न मानते हुए भी वे देश क्यों पराधीन हुए? अहिसा पर आक्षेप करने वालो के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नही है। उत्तर यही है कि कभी वे आपसी फूट के कारण पराधीन हुए और कभी अपनी विलासिता व कायरता के कारण। उनकी परतन्त्रता में अहिसा कभी भी कारण नही बनी।

(६) कुछ व्यक्ति यह पूछते हैं कि यदि किसी के घर मे तथा दुकान मे रखे हुए खाद्य पदार्थों मे कीडे पड जायें, कागज मे दीमक लग जाये, तो ऐसी परिस्थिति मे वह व्यक्ति क्या करे?

इस सम्बन्ध मे हम पहले भी कह आये हैं। हमारे प्रयत्न तो यही होने चाहिये कि हम साफ-सुथरा थोडा-थोडा सामान ही लायें जो थोडे दिन मे ही खत्म हो जाये। इसके साथ-साथ हम उस सामान की पर्याप्त देख-भाल भी रखें, जिससे कि ऐसी परिस्थिति आने की सम्भावना ही न रहे और हम हानि व हिंसा दोनो से बचे रहे। परन्तु फिर भी असावधानीवश अथवा किन्हीं अनिवार्य कारणों से ऐसी परिस्थिति आ भी जाती है, तो हमें उस कागज व खाद्य पदार्थों को मैदान मे किसी ऐसी जगह रखवा देना चाहिए, जहा उन कीडो के मरने की सम्भावना कम से

कम हो। यदि हम इतनी आर्थिक हानि उठाने को तैयार नही है, तो उस सामान को इस प्रकार सावधानी पूर्वक साफ करना चाहिये, जिससे कि उन जीवो के मरने की सम्भावना कम से कम हो। उस सामान मे से जो जीव निकले उनको ऐसी सुरक्षित जगह रखवा देना चाहिये, जिससे कि वे किसी के पैरो के नीचे नही आ सकें तथा अन्य पशुओ द्वारा न खाये जा सके।

हम पहले भी कह चुके हैं कि ससार मे पूर्ण अहिंसक बन कर रहना असम्भव है। हम तो अपनी ओर से पर्याप्त सावधानी ही रख सकते हैं। सावधानीपूर्वक और दया-भाव से जो कार्य किये जाते हैं उनसे हिंसा का दोष लगता अवश्य है, परन्तु कम लगता है।

वास्तव मे तो हम किसी भी जीव को न सुख दे सकते हैं, न दु ख। किसी भी जीव को जो भी सुख व दु ख मिलते हैं वे उसके अपने स्वय के ही द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कर्मों के फल स्वरूप ही मिलते है। हम तो केवल निमित्त मात्र ही होते है। परन्तु हम अपनी अज्ञानता के कारण अपनी भावनाओ के अनुसार ही कर्मों का सचय करते रहते हैं।

एक प्रश्न यह उठता है कि क्या अहिंसा द्वारा विश्व की समस्याओ का समाधान हो सकेगा ?

समस्याओ के समाधान की बात तो जाने दीजिये, मै तो यह कहता हू कि जहा अहिंसा का व्यवहार होगा वहा समस्याये होगी ही नही। यदि वहा पर किसी वस्तु का अभाव भी होगा तो वहा का प्रत्येक व्यक्ति उस अभाव का कष्ट स्वय सह लेगा, परन्तु अपने कारण किसी अन्य को किसी प्रकार का कष्ट न होने देगा। जहा इस प्रकार की

भावना होगी और उसी के अनुसार व्यक्तियो का आचरण होगा, वहा समस्याओ का अस्तित्व ही कहा होगा ?

हम एक उदाहरण ले। आपको किसी व्यक्ति से रुपये लेने हैं, जो उस पर बहुत दिनो से बाकी हैं। आप क्रोध में भर कर उससे रुपये माँगने जाते हैं। वह व्यक्ति आपके सामने हाथ जोडकर खडा हो जाता है और तत्काल ही आपका रुपया चुकाने मे अपनी असमर्थता बताता है। उसके इस प्रकार के व्यवहार से क्या आपका क्रोध ठहर सकेगा ? आप उसकी असमर्थता को देखकर यही कहेगे कि अच्छा कोई बात नही, जब हो सके, तब चुका देना। इसके विपरीत यदि वह व्यक्ति अपनी धौस दिखाकर आपके सामने अनुचित व्यवहार करता तो आप दोनो का झगडा हो जाना अवश्यम्भावी था।

हम एक और उदाहरण देते है। मान लिया किसी व्यक्ति को अनजाने मे ही आपसे ठोकर लग जाती है। वह व्यक्ति क्रोधित होकर कहता है "क्या आपको दिखाई नही देता, जो ठोकर मारकर चल रहे हो ?" आप भी क्रोधित होकर कहते हैं—"रास्ते मे क्यो बैठे हुए हो ? इस प्रकार रास्ते मे बैठोगे तो ठोकर लगेगी ही।" इस प्रकार बात बढते-बढते आप दोनो मे झगडे की नौबत आ जायेगी। इसके विपरीत आपसे ठोकर लगने पर यदि आप उस व्यक्ति से क्षमा माँग लेते तो वह यही कहता "कोई बात नही। गलती मेरी ही थी, जो मैं रास्ते मे बैठा हुआ था।" इस प्रकार आप दोनो ही अपनी-अपनी गलती मानते और झगडा होने का प्रश्न ही नही उठता।

अहिंसा और जनतन्त्र

आज ससार मे जनतन्त्र की बहुत चर्चा है। जनतन्त्र किसी भी देश के अपने नागरिको के जीवन तथा उनके अधिकारो की सुरक्षा का भरोसा दिलाता है। परन्तु अहिसा जनतन्त्र से भी बहुत आगे है। जबकि जनतन्त्र केवल अपने देश के ही नागरिको के जीवन व उनके अधिकारो तक ही सीमित है, अहिसा समस्त ससार के प्रत्येक प्राणी के जीवन और उसके अधिकारो की सुरक्षा करने के लिये प्रेरित करती है।

हिंसा अथवा अहिंसा ?

हमको हिसा और अहिसा इन दोनो मे से एक को 'धर्म' के रूप मे चुनना है। धर्म सार्वभौम होता है। ऐसा कभी नही होता कि कुछ व्यक्तियो का धर्म हिसा हो और कुछ का अहिसा। ऐसी दशा मे आप दोनो मे से किसका चुनाव करेगे ?

आप कुछ समय के लिये हिसा को धर्म मानने वाले ससार की कल्पना करे। ऐसे ससार का नियम होगा "या तो अन्य जीवो की हत्या करो अन्यथा वे तुम्हारी हत्या कर देगे" (Kill or be Killed)। ऐसी स्थिति मे आपको चारो ओर प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे को कष्ट पहुचाता हुआ दिखाई देगा। चारो ओर अविश्वास और भय का वातावरण होगा। प्रत्येक प्राणी को हर समय अपने प्राण बचाने की चिन्ता लग रही होगी। चारों ओर रुदन व चीत्कार तथा रक्त व मास के दृश्य ही दिखाई दे रहे होगे।

इसके विपरीत अहिसा को धर्म मानने वाले ससार मे बिल्कुल उलटा ही दृश्य दिखाई देगा। ऐसे ससार का नियम

होगा "स्वय भी जियो और दूसरों को भी जीने दो" (Live and let live)। इन नियमो को मानने वाले संसार मे सब ओर शान्ति, प्रेम, अभय और विश्वास का वातावरण होगा। प्रत्येक व्यक्ति का हृदय करुणा से परिपूर्ण होगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को यही ध्यान होगा कि उसके द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुचे। इसलिए वहा पर दुख व कष्ट नाम की कोई वस्तु ही नही होगी।

आप स्वयं निर्णय करे कि आपको इन दोनो मे से कौन से ससार मे रहना प्रिय लगेगा ?

हम आपके सम्मुख एक और तथ्य रखते हैं। ससार के समस्त प्राणी दु ख पाने से बचना और सुख पाना चाहते हैं। सुख उनको तभी मिल सकता है जब कोई भी अन्य प्राणी उनको किसी प्रकार का भी कष्ट न दे अर्थात् प्रत्येक प्राणी अहिसा का पालन करे।

हम सब जानते है कि यदि कोई व्यक्ति आम प्राप्त करना चाहता है तो उसे आम ही बोने पडेगे। नीम बोकर कोई भी व्यक्ति आम प्राप्त नही कर सकता। इसी प्रकार यदि किसान को गेहू की फसल प्राप्त करनी है तो उसे गेहू ही बोना पडेगा। अर्थात् पहले उसे अपने पास के गेहू का त्याग करना पडेगा। इस त्याग के फलस्वरूप ही उसको कई गुना अधिक गेहू प्राप्त होगा। हम अधिक क्या कहे, एक जुआरी को भी धन जीतने के लिये, पहले अपने पास के धन को दाव पर लगाना होता है, तभी वह धन जीतने की आशा कर सकता है। इसी प्रकार यदि हमे सुख प्राप्त करना है तो हमें सुख का ही वृक्ष लगाना होगा। पहले हमें अपने वर्तमान सुख का त्याग करना होगा। हमे दूसरे

जीवो की सेवा-सुश्रुषा करनी होगी, उनके प्रति अहिसक व्यवहार रखना होगा। इस प्रकार अपने वर्तमान सुख के त्याग के फलस्वरूप ही हम भविष्य मे उससे भी कई गुना सुख प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि अपने पडौसी के मकान मे आग लगाकर वह अपने मकान मे सुखपूर्वक रह सकता है तो यह उसका भ्रम है। पडौसी के मकान मे लगी आग से उसके मकान को भी हानि पहुचेगी। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति हिसक व्यवहार करता है तो उसका सुख प्राप्त करने की आशा करना मृगतृष्णा के समान होगा। अत निष्कर्ष यही निकला कि यदि हम सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो हमे अपना व्यवहार अहिसक ही रखना पडेगा। अर्थात् अहिसा ही समस्त सुखो का स्रोत है।

वास्तव मे अहिसक आचरण केवल धर्म ही नही है, यह तो जीने का ढग है, जीने की कला है, जिससे हमे स्वय को भी सुख मिलता है और दूसरो को भी। अहिसा परस्पर सहयोग तथा सह-अस्तित्व को जन्म देती है जबकि हिसा प्रतिस्पर्द्धा और वैमनस्य की जननी है, जिसका परिणाम है युद्ध और सर्वनाश।

धर्म के नाम पर हिंसा

भगवान् महावीर के समय मे धर्म के नाम पर यज्ञो मे पशुओ की और कभी-कभी मनुष्यो की भी बलि दी जाती थी। यह सब वेदो के नाम पर और वेदो के अनुसार किया जाता था। इसके समर्थन मे कहा जाता था कि यज्ञो मे जो बलि दी जाती है वह हिसा नही है, क्योकि यज्ञो से धर्म होता है तथा इन पशुओ को पीडा नही होती और ये पशु स्वर्ग जाते हैं।

भगवान् महावीर के द्वारा हुए अहिसा के प्रचार के कारण इस बलि प्रथा मे बहुत कमी हुई। फिर भी किसी न किसी रूप मे यह बलि प्रथा आज तक चली आ रही है। आज भी बकरो, भेडो, भैसो, मुर्गों आदि की और कभी-कभी चोरी से मनुष्य की भी बलि दी जाती है। हिन्दू अपने देवी-देवताओ को प्रसन्न करने के लिए बलि देते है। मुसलमान अपने खुदा की राह में अपनी सबसे प्यारी वस्तु की कुरबानी देते हैं। (इनकी सबसे प्यारी वस्तु ये दीन-हीन भेड-बकरे ही होते है।) बहुत से आदिवासी भूत-प्रेतो और दु.ख बीमारी को अपने से दूर करने के लिए और अगर कोई दुःख बीमारी आ जाये तो उससे बचने के लिये तथा अपने देवताओ को प्रसन्न करने के लिये पशुओं की और कभी-कभी मनुष्यो तक की बलि देते हैं।

क्या इस प्रकार से बलि देना उचित है? क्या इससे

धर्म होता है ? क्या इससे हिन्दुओं के ईश्वर और मुसलमानो के अल्लाह प्रसन्न होते हैं ? क्या इससे किसी की मनोकामनाए पूरी हो सकती हैं ?

यदि हम वेदो का अवलोकन करे तो उसमे ऐसे अनेको मन्त्र पाएंगे जिनमे बतलाया गया है कि हिंसा करना महापाप है और हिंसा करने वाला घोर नर्क मे जाता है। जिन वेदो मे इस प्रकार असन्दिग्ध शब्दो मे हिंसा को महापाप बतलाया गया हो उन्ही वेदो मे हिंसा का समर्थन कैसे किया जा सकता है ? तथ्य यह है कि वेद किन्ही एक ही ऋषि द्वारा एक ही समय मे रचे हुए नही हैं, वरन् इनकी विभिन्न ऋचाए, विभिन्न समयो मे विभिन्न ऋषियो द्वारा रची गई हैं। जिन ऋषि की जैसी मनोवृत्ति हुई उन्होने वैसी ही ऋचाए बना दी। जो ऋषि दयालु व सयमी थे उन्होने हिंसा करना पाप बतलाया। जो ऋषि मासलोलुपी और इन्द्रियो के दास थे उन्होने पशुओ की बलि देने के समर्थन मे ऋचाए बना दी। स्मृतियो मे तो स्पष्ट रूप से इन सभी का एक साथ विधान किया गया है। बहुत से स्थानो पर ऐसा भी हुआ है कि एक ही शब्द के दो अर्थ होने के कारण व्यक्तियो ने अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल इन द्वयर्थक शब्दो के अर्थ लगा लिये। उदाहरण के लिये हम 'अज' शब्द को लेते है। इसका एक अर्थ है, "पुराना धान जो फिर से न उग सके", इसका दूसरा अर्थ है 'बकरा'। जो विद्वान, सयमी तथा दयालु थे उन्होने इसका अर्थ पुराना धान माना, किन्तु जो विद्वान मांसलोलुपी थे उन्होने इसका अर्थ बकरा माना। इसी प्रकार प्राचीन काल मे :—

फलो के छिलको को चर्म कहते थे।

(बोधायन गृह्य सूत्र)

फलो से जो रस निकलता था वह रुधिर कहलाता था। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

फलो के गूदे को मास कहते थे। (चरक सहिता)

फलो की गुठली को अस्थि कहते थे।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र) · (सुश्रुत सहिता, शा० आ० ३, श्लोक ३२)

फलो के भीतरी भाग को मज्जा कहते थे।

(चरक सहिता)

मास—The fleshy part of a fruit

(आप्टेकृत सस्कृत अग्रेजी डिक्शनरी)

Flesh—Soft pulpy substance of fruit

That part of root, fruit, etc which is fit to be eaten

(English Dictionary by J. Ogilvie)

यहा पर हम कुछ और द्वयर्थक शब्द दे रहे हैं —

अनिमिष—देव, मछली, चाडाल, शिष्य व अन्तेवासी।

(वैजयन्ती)

कपि—बन्दर, शिलारस।

आम—मास, आम्रफल।

शश—खरगोश, लोध्र।

कलभ—हाथी का बच्चा, धतूरे का वृक्ष।

गो-जिह्वा—गाय की जीभ, गोभी।

तुरग—घोड़ा, सेंधा नमक।

मार्जार—बिल्ली, अगस्त्य वृक्ष, हिंगोरी वृक्ष, बिदारी कन्द, लवग।

वराह—सूअर, नागरमोथा।

इसी प्रकार के और भी अनेको शब्द हैं, जिनका सक-लन 'अमरकोश', 'विश्वप्रकाश', 'अनेकार्थ सग्रह' आदि कोशो में दिखलाई पडता है। एक शब्द के कई अर्थ होने से लोगो मे किसी शब्द के बारे मे भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। वास्तव मे किसी शब्द का अर्थ प्रसग के अनुसार लगाना चाहिए। कही-कही ऐसा भी है कि मनुष्य की दुर्भावना, कुविचार, छल-कपट, अहकार आदि की मनोवृत्ति को सूचित करने के लिए पशु के नाम से पुकारा गया है। ऐसे मन्त्रो का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति के अन्दर जो कुविचार, दुर्भावना व पशुवृत्ति है उसकी बलि देनी चाहिए। परन्तु मासलोलुपी व अर्थलोलुपी व्यक्तियो ने ऐसे शब्दो का तात्पर्य पशु ही मान कर पशुबलि का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया।

आज भी हम समाचार-पत्रो मे पढते हैं कि अमुक व्यक्ति ने सन्तान पाने की इच्छा से एक बालक की बलि दे दी, अमुक व्यक्ति ने धन पाने की इच्छा से एक मनुष्य की बलि दे दी। ऐसे व्यक्ति भी संसार मे मौजूद हैं, जिन्होने धन के लोभ मे या देवी को प्रसन्न करने के लिए अपनी ही सन्तान की बलि दे दी है। अमरीका जैसे भौतिकवादी देश मे भी ऐसे हत्याकाड हुए हैं, जब अपने किसी विश्वास की खातिर सिर फिरे व्यक्तियो ने कई-कई व्यक्तियो की हत्या कर डाली। क्या कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे हत्याकाडो को उचित कह सकता है? क्या ऐसे हत्याकाडो से किसी की मनोकामना पूरी हुई है?

हमको इन तथाकथित धर्म-श्रद्धालुओं की मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसकर देखना है।

क्या ईश्वर और अल्लाह इस प्रकार की पशु बलि से प्रसन्न होते हैं ?

यदि हम ईश्वर और अल्लाह को ससार के समस्त प्राणियों पर दया करने वाला मानें तो कोई भी दयालु ईश्वर या अल्लाह इन निर्दोष व मूक प्राणियो की हत्या से प्रसन्न नहीं हो सकता। एक ओर तो हम ईश्वर और अल्लाह को दयालु, कृपालु, दीनानाथ, सच्चा, न्यायी आदि नामो से पुकारे और दूसरी ओर उनके नाम पर इस प्रकार निर्दयतापूर्वक हत्याकाण्ड करे। क्या ईश्वर और अल्लाह ऐसे क्रूर कार्यों को न्यायोचित कहेगे ?

क्या ईश्वर और अल्लाह के नाम पर बलि दिये जाने वाले पशुओ को दर्द नही होता ?

इसका उत्तर तो कभी भी ऐसे वधस्थलो को देखने से ही मिल सकता है। बध किये जाने वाले पशुओ को पहले से ही अपनी हत्या किये जाने व पीड़ा होने का भान हो जाता है। उनको बलपूर्वक खीच-खीच कर बधस्थलो पर लाया जाता है। बहुत बार तो बधिक इन पशुओ का मुँह रस्सी से बाँध देते हैं, जिससे पीड़ा के कारण उनके मुँह से आवाज भी न निकल सके। बध किये जाते समय वह पशु किस प्रकार तडपता है और किस प्रकार तड़प-तडप कर उसके प्राण निकलते हैं, यह दृश्य देखने मे ही बहुत करुणा-जनक होता है। ऐसे समय मे बहुत से बलि देने वाले भी वहा से दूर चले जाते हैं या मुँह फेर कर खडे हो जाते हैं।

क्या बलि दिये जाने वाले पशु स्वर्ग जाते हैं ?

इस सम्बन्ध मे तो कोई भी कुछ नही कह सकता।

हा, इतना अवश्य है कि मरते समय जिस पशु को इतनी शारीरिक पीडा हो रही हो उसके हृदय मे न जाने कितनी तीव्र दुर्भावनाए उत्पन्न हो रही होगी ? क्या हृदय मे तीव्र दुर्भावनाए लेकर मरने वाला कोई भी जीव स्वर्ग जा सकता है ? एक बात और, यदि स्वर्ग प्राप्त करने का मार्ग इतना सीधा व सरल है तो मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करने के लिए वर्षों तक कठोर तपस्या क्यो करते हैं ? भगवान की बेदी पर अपनी ही बलि चढवा दिया करें, कुछ क्षणो का कष्ट है, फिर तो अनन्तकाल तक सुख ही सुख है।

कुछ समय पहले तक वाराणसी मे कुछ स्वार्थी पण्डे, अन्धश्रद्धालु व धर्मान्ध व्यक्तियो को उनकी अपनी ही इच्छानुसार काट कर गगा जी मे बहा देते थे। इन दुष्ट पण्डो ने यह विश्वास फैला रखा था कि इस प्रकार प्राण देने वाला व्यक्ति सीधा 'स्वर्ग' जाता है। क्या स्वर्ग का यही मार्ग है ?

राजपूत काल मे और उससे भी पहले सैकडो वर्षों तक मृतक पुरुष के साथ उसकी विधवा पत्नी को भी जीवित जला दिया जाता था। यह सती प्रथा कहलाती थी। कुछ विधवाए तो स्वेच्छा से ही पति के साथ सती हो जाती थी, जबकि बहुत-सी विधवाओ को बलपूर्वक उनके मृत पतियो की चिताओ मे बाध कर जला दिया जाता था। इन विधवाओ को यही समझाया जाता था कि इस प्रकार सती होने से वे स्वर्ग मे जायेगी और अपने स्वर्गवासी पति को, जो स्वर्ग मे उनकी राह देख रहे है, फिर से पत्नी बन जायेंगी। इस मान्यता मे कितनी सच्चाई है, इसको कोई भी विवेकशील व्यक्ति समझ सकता है ? क्या सारे पति मर कर स्वर्ग मे ही जाते हैं, चाहे जीवन मे उन्होंने कितने

ही पाप क्यों न किये हो ?

कुछ व्यक्ति धर्म परिवर्तन कराने के लिए और अपना धर्म फैलाने के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं। उनका न्याय और सिद्धान्त यही है कि किसी व्यक्ति को जीना है तो उनका धर्म अगीकार करके जिए अन्यथा विधर्मियो को जीने का अधिकार ही नही है। तलवार के बल पर धर्म परिवर्तन कराने को वह धार्मिक कृत्य मानते हैं। इस प्रकार धर्म परिवर्तन कराने मे कितना धर्म होता है, यह तो इस प्रकार धर्म परिवर्तन कराने वाले व्यक्ति ही जानें परन्तु कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस बात का समर्थन नही करेगा।

अब से ढाई-तीन सौ वर्ष पहले तक यूरोप मे ईसाई धर्म को ही मानने वाले दो सम्प्रदायो Catholics और Protestants मे कितने भयकर युद्ध हुए हैं और एक सम्प्रदाय वाले व्यक्तियो ने दूसरे सम्प्रदाय वाले व्यक्तियो पर कैसे-कैसे अमानुषिक अत्याचार किये है, इसको इतिहास के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं। क्या कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इन युद्धो को उचित बता सकता है ? इस प्रकार धर्म के नाम पर रक्तपात करने से धर्म की कितनी हानि हुई है, यह इन धर्मान्ध व्यक्तियो को नही मालूम। आज के नवयुवक धर्म के नाम पर इसी प्रकार के रक्तपात को देखकर धर्म से विमुख होते जा रहे हैं।

इन तथ्यो पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यही पता चलता है कि किन्ही व्यक्तियो ने अपनी दूषित मनोवृत्ति की तुष्टि के लिए अर्थ के अनर्थ कर दिये हैं। वास्तव में बलि देने और कुर्बानी देने का तात्पर्य तो यही है कि अपनी दुर्भावनाओं को, अपनी झूठी माया-ममता को, अपनी

विषय-वासनाओं की और अपने अन्दर छिपी पशु वृत्ति की बलि दो। ऐसा करने से ही आत्मा पवित्र व उन्नत होगी और उसकी मुक्ति अर्थात् सच्चे सुख का मार्ग प्रशस्त होगा। इसके विपरीत रक्तपात से और आत्म-हत्या करने से कभी भी धर्म नही होता। यह तो हिंसा है और केवल हिंसा। ऐसे कार्यों को कभी धर्म नही माना जा सकता, क्योकि इनसे मनुष्य की सात्विकता और पवित्रता नष्ट हो जाती है।

रात्रि-भोजन

हिंसा से बचने, अहिंसा धर्म का पालन करने और अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये रात्रि मे भोजन करना उचित नही है। यह सम्भव है कि पश्चिमी देशो की जल-वायु भिन्न होने के कारण वहा रात्रि भोजन से स्वास्थ्य को इतनी हानि न होती हो, जितनी भारत मे होती है।

रात्रि भोजन के पक्ष मे कुछ व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि जब रात्रि में विद्युत् प्रकाश द्वारा दिन का सा उजाला हो सकता है तो रात्रि मे भोजन करने मे कोई बुराई नही है।

किन्तु उनका यह तर्क ठीक नही है। विद्युत् के कृत्रिम प्रकाश और सूर्य के प्राकृतिक प्रकाश मे बहुत अन्तर है। बरसात के मौसम मे दिन के समय बिजली की रोशनी पर एक भी मच्छर नही आता परन्तु रात्रि होने पर उसी रोशनी पर हजारो मच्छर इकट्ठे हो जाते है।

सूर्य के प्रकाश मे जितनी अच्छी तरह से वस्तुए दिखाई देती हैं, वैसी बिजली की रोशनी मे कभी दिखाई नही दे सकती।

दिन के समय मे वायु मे आक्सीजन (Oxygen) की मात्रा अधिक होती है जो हमारे पेट मे पडे भोजन को जल्द पचाने मे सहायता करती है।

सूर्य का प्रकाश कीटाणुओं का नाशक होता है, जबकि रात्रि का अन्धकार कीटाणुओ की वृद्धि मे सहायक होता

है। बिजली का कृत्रिम प्रकाश भी इन कीटाणुओ की वृद्धि को नही रोक सकता।

बहुतेरे कीडे ऐसे होते हैं, जो दिन मे तो अधेरे कोनो मे छिपे रहते हैं, परन्तु रात को उन कोनो से निकल कर वे उछल-कूद करने लगते है। रात्रि मे भोजन बनाते और भोजन खाते समय ऐसे कीडे और रात्रि को ही उत्पन्न होने वाले अन्य कीडे, पतगे व कीटाणु हमारे भोजन मे गिर पडते है और भोजन को विषैला बना देते हैं। समाचार-पत्रो मे इस प्रकार विषैले हुए भोजन खाने से हुई मृत्युओ के समाचार हम प्राय पढते ही रहते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी देखा जाये तो हमे अपना भोजन सोने से तीन-चार घण्टे पूर्व ही कर लेना चाहिए, जिससे कि सोने के समय तक हमारा किया हुआ भोजन हजम हो जाये। यदि सोने के समय तक भोजन हजम नही होता तो वह आमाशय मे पडा सडता रहता है और रोग उत्पन्न करता है। आजकल पेट की बीमारियो के बढने का मुख्य कारण यह रात्रि-भोजन ही है। यदि हम रात्रि को भोजन न करके दिन मे ही भोजन कर लिया करे तो पेट मे होने वाले कम से कम नब्बे प्रतिशत रोग उत्पन्न ही न हो।

यदि कोई सस्था रात्रि भोजन व मासाहार के आधार पर रोगियो का सर्वेक्षण करे तो हमे पूर्ण विश्वास है कि मासाहार व रात्रि-भोजन करने वाले और शाकाहार व दिवा भोजन करने वाले रोगियो का अनुपात कम से कम बीस व एक का अवश्य होगा।

यदि पशु-पक्षियो को दिन के समय भूखा न रखा गया हो तो वे रात को कभी नही खाते। इससे स्पष्ट है कि प्राकृतिक रूप से भी रात्रि भोजन उचित नही है।

बहुत पुराने समय से अंग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है :

Early to bed and early to rise,
Makes a man healthy, wealthy and wise

इसका अर्थ यही है कि जल्दी सोना व जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान व चतुर बनाता है।

हम जल्दी उसी दशा मे सो सकते हैं, जबकि भोजन जल्दी ही अर्थात् दिन छिपने से पहले ही कर लें। ऐसा करने से हमारा भोजन तीन-चार घण्टे मे पच जायेगा और हम नौ-दस बजे के बीच आसानी से सो सकेंगे। किसी भी शरीर-विज्ञानशास्त्र मे ऐसा नही लिखा है कि व्यक्ति को रात्रि मे भोजन करना चाहिए। सब जगह यही लिखा हुआ है कि सोने के समय तक हमारा खाया हुआ भोजन पच जाना चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है, जब हम दिन मे ही भोजन कर ले।

रात्रि-भोजन-त्याग से एक लाभ और भी है। ऐसा करने से मासाहार व विशेषकर मदिरापान मे भी अपने आप ही कमी आ जायेगी। आज कल रात्रि भोजन के साथ ही मासाहार व मदिरापान का प्रचलन बढता जा रहा है। दिन के समय तो किसी को इतनी फुरसत नही होती कि वह घण्टे-दो-घण्टे मास व मदिरा सेवन पर नष्ट करे। इसलिए इन अनर्थकारी पदार्थों का सेवन अधिकाशतया रात को फुरसत से ही किया जाता है। यदि हम रात्रि-भोजन का त्याग कर दे तो यह दुर्व्यसन स्वयमेव ही छूट जायेंगे।

अत यह स्पष्ट है कि रात्रि-भोजन का त्याग करने से हम केवल अहिंसा धर्म का पालन ही नही करेंगे, अपितु अपना स्वास्थ्य भी ठीक रख सकेंगे, धन भी बचा सकेंगे और बुरी आदतो से भी बचे रहेंगे।

मांसाहार

अब हम मासाहार के सम्बन्ध मे कुछ विचार करेगे।

ससार मे मासाहार के लिये जितनी हिंसा की जाती है, उतनी हिंसा और किसी भी कार्य के लिये नही होती। प्रतिदिन करोडो मछलिया व पशु-पक्षी मास प्राप्त करने के लिये बध किये जाते हैं।

मांसाहार के पक्ष में कुछ तर्क व उनका समाधान

(१) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि हमारे भोजन से हिंसा व अहिंसा का कोई सम्बन्ध नही है। हम कुछ भी खायें, इससे कोई अन्तर नही पडता। हमको प्रत्यक्ष मे हिंसा नही करनी चाहिये।

यह तर्क नही, अपितु उसी प्रकार का कुतर्क है जिस प्रकार कुछ व्यक्ति कहते है कि व्यापार मे झूठ बोलने मे, कम तोलने मे, मिलावट करने मे कोई बुराई नही है, क्योकि ऐसा किये बिना व्यापार चल नही सकता और व्यापार मे ऐसा करने से हमारी व्यक्तिगत ईमानदारी पर कोई आच नही आती। क्या कोई विवेकशील व्यक्ति ऐसे तर्क को मान्य करके व्यापार मे इस प्रकार की बेईमानी को उचित ठहरायेगा ? इसी प्रकार मासाहारी भी अहिंसक कैसे कहला सकते हैं, यह बात समझ से परे हैं। यह सर्वविदित है कि मास प्राप्त करने के लिये स्वस्थ पशु-पक्षी का बध किया जाता है। स्वय मरे हुए पशु-पक्षी का मास नही

खाया जाता, क्योकि वह विषैला हो जाता है। इसलिए यह तथ्य है कि बिना हिंसा के हम मास प्राप्त नहीं कर सकते। अतः जो मासाहार करता है वह शत-प्रतिशत हिसक है। किसी भी अन्य जीव के मास से अपना पोषण करना कहा की नीति और न्याय है? क्या मनुष्यों की भाति पशु-पक्षियो को भी जीने का अधिकार नहीं है?

(२) मासाहार के पक्ष मे एक तर्क यह दिया जाता है कि सारे ससार मे सूक्ष्म जीव भरे पडे हैं, वनस्पति व अनाज मे भी जीवन होता है तथा जब तक हम जीवित हैं तब तक इनकी हिंसा होती रहनी अवश्यम्भावी है, फिर केवल मासाहार का ही निषेध क्यों किया जाये?

यह ठीक है कि ससार मे पूर्ण अहिसक बनकर रहना असम्भव है, परन्तु इसका तात्पर्य यह तो नही कि हम अनावश्यक हिंसा भी करते रहें। हम पहले भी कई बार कह आये है कि हिंसा का हमारे मन के भावो से गहरा सम्बन्ध है। जीवन के आवश्यक क्रिया-कलाप करते हुए जो हिंसा हमसे हो जाती है वह हम जान-बूझकर नही करते और उस हिंसा से हमारा कोई स्वार्थ भी सिद्ध नही होता। वह हिंसा तो लाचारी मे हो जाती है। परन्तु मास प्राप्त करने के लिये तो एक जीव का जान-बूझ कर बध किया जाता है। यह हिंसा सकल्पी हिंसा के अन्तर्गत आती है। जो हिंसा करना हमारे लिए आवश्यक नही है और जिस हिंसा से हम आसानी से बच सकते हैं, ऐसी निरर्थक हिंसा क्यों की जाये?

यहाँ एक तथ्य और भी विचारणीय है। ससार मे प्राणियो के पाच इन्द्रियां—यथा स्पर्शन (शरीर), रसना (जिह्वा), घ्राण (नाक), चक्षु (आखें) और कर्ण (कान)

तथा एक मन होता है। स्पर्शन इन्द्रिय का विषय महसूस करना है, रसना इन्द्रिय का विषय स्वाद लेना होता है, घ्राण का विषय सूँघना होता है, चक्षु का विषय देखना और कान का विषय सुनना होता है। इन इन्द्रियो के आधार पर ससार के समस्त प्राणियो को हम छह श्रेणियो मे विभक्त कर सकते हैं।

(क) पहली श्रेणी के जीव तो इतने अनुन्नत होते हैं कि उनके केवल एक इन्द्रिय अर्थात् केवल शरीर ही होता है, जैसे—वनस्पति।

(ख) दूसरी श्रेणी के जीव ऐसे होते हैं जिनके स्पर्शन व रसना, दो इन्द्रिया होती हैं, जैसे—लट, केंचुआ, शख, कौडी आदि जीव।

(ग) तीसरी श्रेणी के जीव स्पर्शन, रसना और घ्राण, इन तीन इन्द्रियो वाले होते है, जैसे—सुरसुरी, खटमल, जू, जोक, चीटी आदि जीव।

(घ) चौथी श्रेणी के जीव ऐसे होते हैं जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रिया होती हैं, जैसे—मक्खी, भौंरा, ततैया आदि जीव।

(च) पाचवी श्रेणी के जीवो के पाचो इन्द्रिया स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण होती हैं, जैसे—पानी मे रहने वाले साप आदि जीव।

(छ) छठी श्रेणी के जीवो के पाचो इन्द्रिया और मन होता है, जैसे—घोडा, गाय, शेर, मनुष्य आदि जीव।

इस प्रकार ये जीव उत्तरोत्तर उन्नत श्रेणी के होते जाते है। पहली श्रेणी के जीवो की हिसा की अपेक्षा दूसरी श्रेणी के जीवो की हिसा मे हजारो गुना पाप होता है। दूसरी श्रेणी के जीवो की अपेक्षा तीसरी श्रेणी के जीवो की

हिंसा मे हजारों गुना पाप है। इसी प्रकार छठी श्रेणी के जीवो की हिंसा में तो बहुत अधिक दोष होता है और मनुष्यो की हिंसा में सबसे अधिक दोष होता है। इस तथ्य को देखते हुए कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह नही कह सकता कि पहली श्रेणी वाले जीवो की हिंसा छठी श्रेणी वाले जीवों की हिंसा के बराबर ही है। इसका अर्थ यह नही है कि हम निचली श्रेणी के जीवो की हिंसा करते रहे। इसके विपरीत हम जो भी कार्य करें बहुत सावधानीपूर्वक और करुणा की भावना से करें, जिससे यथासम्भव किसी भी जीव को कष्ट न होने पावे। हम भोजन भी इतना ही करें, जितना कि शरीर के लिए आवश्यक हो। जितना सादा व कम मात्रा मे हम भोजन करेंगे उतनी ही हिंसा भी कम होगी। इसके अतिरिक्त ऐसा भोजन करने से हम बीमार भी नही पडेंगे और हमारा स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

(३) कुछ व्यक्ति यह कहते है कि यदि हम अनाज व फल खायेंगे तो उनमे भी जीवन होने के कारण बहुत से जीवो की हिंसा होगी, परन्तु यदि हम मास खायेंगे तो केवल एक पशु की ही हिंसा होगी। इसलिए शाकाहार में अधिक पाप है और मासाहार मे कम।

इन व्यक्तियो का यह तर्क ठीक नही है। जैसा कि हमने ऊपर बताया कि वनस्पति जीव की हिंसा की अपेक्षा एक पशु की हिंसा मे लाखो गुना पाप होता है।

इसके अतिरिक्त एक पशु मे केवल एक ही जीव नहीं होता। उस पशु के शरीर मे भी लाखो सूक्ष्म जीव होते हैं, जो उस पशु के शरीर के आधार पर रहते हैं। उस पशु को मारने से उन सब जीवो की हत्या का पाप भी लगेगा। कच्चे मास मे व पके मास मे भी प्रति क्षण कीटाणु उत्पन्न

होते रहते हैं, मास भक्षण से इन सबकी हत्या का दोष भी लगता है। एक बात और है, न तो मास कच्चा ही खाया जा सकता है और न केवल मास पर ही कोई व्यक्ति जीवित रह सकता है। मांस तो मिठाई की तरह स्वाद के लिये खाया जाता है। आजकल अपने को आधुनिक जिताने के लिये भी मास खाया जाने लगा है। इसलिए अनाज व फलो का सेवन तो अनिवार्य है ही और उनके प्रयोग से जो हिसा होती है उस हिसा से तो कोई भी व्यक्ति बच ही नही सकता, परन्तु मास खाना तो अनावश्यक हिसा करना है।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी विचारणीय है। जिस पशु का मास प्राप्त करना होता है उसका बध किया जाता है, जिससे कि उसका जीवन सदैव के लिये समाप्त हो जाता है। परन्तु वृक्षो को हानि पहुचाये बिना ही उनसे फल प्राप्त किये जाते हैं। यदि वृक्ष से पका हुआ फल तोडा नही जाय तो कुछ समय पश्चात् वह फल अपने-आप ही वृक्ष से टूट जाता है। फिर जैसा कि हमने पहले बतलाया कि वनस्पति मे जीवन अवश्य होता है, परन्तु वह बिल्कुल ही क्षुद्र और अनुन्नत अवस्था मे होता है।

इन तथ्यो को देखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि शाकाहार मे मासाहार की अपेक्षा बहुत कम पाप होता है।

(४) कुछ व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि ससार की जन-सख्या जिस तेजी से बढती जा रही है उस अनुपात से अनाज का उत्पादन नही बढ रहा है, इसलिए अन्न की कमी को पूरा करने के लिए मासाहार आवश्यक है।

यह ठीक है कि ससार की जनसख्या बढ रही है और यह भी ठीक है कि अन्न का उत्पादन उसी अनुपात से नहीं

बढ़ रहा है, परन्तु इसके लिए मनुष्य स्वयं दोषी है। वह अपने दोष के लिये इन निरपराध जीवों की हत्या क्यों करे? जनसंख्या को सीमित रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने सयम रखने का उपदेश दिया था। व्यक्ति जितने सयमी होंगे उतनी ही जनसख्या सीमित रहेगी। उनका स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा और वे बलवान भी होगे। परन्तु आज के वातावरण मे सयमपूर्वक जीवन बिताना बहुत कठिन हो गया है। फिर भी वैज्ञानिकों ने गर्भ-निरोध के नये-नये उपाय खोज निकाले हैं, जिनका प्रयोग करने से जनसख्या सीमित रखी जा सकती है।

यहा एक तथ्य और भी ध्यान मे रखने योग्य है। मासाहार से जनसख्या मे वृद्धि की अधिक सम्भावना होती है, क्योंकि मास व अण्डो के सेवन से व्यक्ति की तामसिक प्रवृत्ति बढती है और वह और भी अधिक विषय-वासनाओ की ओर आकृष्ट होता है, इसके विपरीत शाकाहार सात्विक होता है और सयमपूर्वक जीवन बिताने में सहायक होता है, जिससे जनसख्या पर अंकुश रखा जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसंख्या को सीमित रखने मे मासाहार एक बडी रुकावट है।

जहा तक अनाज की पैदावार का प्रश्न है, सभी जानते हैं कि अभी बहुत सी ऐसी भूमि पडी हुई है जहाँ पर थोड़ा परिश्रम करके अनाज उत्पन्न किया जा सकता है। बहुत सी खेती योग्य भूमि ऐसी है, जहाँ पर सिचाई के साधन न होने अथवा बाढ़ आ जाने व सूखा पड़ जाने से अनाज कम होता है। ऐसी भूमि पर थोडे से परिश्रम से पर्याप्त अनाज उगाया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमने अभी तक उपलब्ध साधनो का भी पूरा उपयोग नहीं

किया है। इन साधनो का उपयोग करने के बजाय कुछ व्यक्ति अनाज की कमी का बहाना बनाकर, सरल उपाय होने के कारण, मासाहार को प्रोत्साहन देते रहते हैं।

एक बात और है। मास प्राप्त करने के लिए जो पशु-पक्षी पाले जाते हैं वे भी अनाज व घास आदि वनस्पतिक पदार्थ खाकर बढते हैं। उनको खिलाने के लिए भी हमको घास व अनाज उत्पन्न करना पडता है। इस बात मे क्या तुक है कि पहले तो भूमि मे घास व अन्य खाद्य पदार्थ उत्पन्न करके इन पशुओ को खिलाये और फिर उनका वध करके उनका मास हम स्वय खाये। वैज्ञानिको ने आकडो के द्वारा सिद्ध किया है कि जितनी भूमि पर पशुओ को पालकर हम उनका मास प्राप्त करते है, उतनी ही भूमि पर यदि हम अपने खाने योग्य अनाज उत्पन्न करे तो हम उनके मास की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा मे अनाज प्राप्त कर सकते है।

(५) मासाहार के पक्ष मे एक तर्क यह भी दिया जाता है कि मासाहार से हम बलवान और बहादुर बनते है।

यह तर्क भी ठीक नही है। मास व अण्डो और अन्य अनाजो, फलो व मेवो आदि मे कितनी-कितनी शक्ति होती है, इसका चार्ट हम पुस्तक के अन्त मे दे रहे हैं। इस चार्ट को देखने से पता चल जाता है कि मास व अण्डो मे अनाज व अन्य वनस्पतिक खाद्यो से अधिक शक्ति नही होती। हाथी, घोडा, बैल, भैसा, ऊट आदि भारी काम करने वाले पशु सब अपनी शक्ति वनस्पतिक खाद्यो से ही प्राप्त करते हैं। मनुष्यो मे भी शाकाहारी व्यक्ति मासाहारियो से निर्बल नही होते।

जहा तक मासाहार द्वारा बहादुर बनने की धारणा है

वह भी निराधार है। मासाहार से हम निर्दयी व क्रूर तो अवश्य बन जाते हैं, परन्तु बहादुर नहीं। हम प्रतिदिन देखते है कि एक गुण्डा किसी की जेब काटकर, किसी का बटुवा छीन कर, किसी के साथ मार-पीट करके, किसी की हत्या करके आराम से चला जाता है, परन्तु मासाहारी व्यक्तियो का भी यह साहस नही होता कि उसको पकड ले। यदि मासाहार से बहादुरी बढती होती, तो आज ससार मे अपराधों की सख्या बढने के स्थान पर कम हो गयी होती; क्योकि ससार मे अधिकतर व्यक्ति मासाहारी ही है। वे सब मासाहारी व्यक्ति बहादुर होते और य। तो अपराधी को अपराध ही नही करने देते और यदि वह अपराध कर भी चुका होता तो उसे तुरन्त पकड लेते। वास्तव में मासाहारी की अपेक्षा शाकाहारी व्यक्तियो मे स्फूर्ति और सहनशीलता अधिक होती है और वे मासाहारियो की अपेक्षा अधिक समय तक परिश्रम कर सकते है।

(६) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि मास स्वादिष्ट होता है। परन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। यदि मास स्वादिष्ट होता तो इस को भी फलो की तरह बिना पकाये और बिना घी मसाला डाले खा लिया करते। इसके विपरीत इसको पकाकर और इसमें घी व मसाले डालकर इसको स्वादिष्ट बनाया जाता है।

यदि हम आर्थिक दृष्टि से भी विचार करें तो मास से अनाज बहुत सस्ता होता है और शाकाहार से निर्धन वर्ग भी अपना पेट भर सकता है।

(७) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि मास तो पशु-पक्षी को मारकर ही प्राप्त किया जाता है, इसलिए इसे प्राप्त करने मे हिंसा होती है। परन्तु अण्डे तो मुर्गियों को बगैर

कष्ट दिये ही प्राप्त किये जाते हैं, इसलिये जैसे दूध पीने में बुराई नही है उसी प्रकार अण्डे खाने मे भी कोई बुराई नहीं है।

परन्तु अण्डो और दूध को एक ही श्रेणी मे नही रखा जा सकता। दोनो का विश्लेषण करने से भी दोनो मे अलग-अलग तत्व पाये जाते हैं। समय पूरा होने पर अण्डो से पक्षी निकलते है, इसलिए अण्डा स्वय भी जीव है, परन्तु दूध से ऐसा कोई जीव नही बनता। दूध देने के पश्चात् पशु को इस दूध से कुछ मोह नही रहता, जबकि पक्षी अपने अण्डो को अपने बच्चो के समान ही प्यार करते हैं, उनकी हर प्रकार से देख भाल करते है और यदि उनके अण्डो को कोई छेडता है तो अपनी जान पर खेलकर भी उनकी रक्षा करते है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अण्डो को और दूध को एक समान नही माना जा सकता।

इस सम्बन्ध मे कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि आजकल जीव रहित अण्डो का उत्पादन हो रहा है। इन अण्डो में से पक्षी नहीं निकलते। इसलिए इन जीव रहित अण्डो के सेवन मे हिंसा नही है।

परन्तु यह तर्क भी ठीक नही है। क्योकि

(क) जो वस्तु शरीर से बनती है वह मास की श्रेणी मे ही आती है। इसलिए वह अभक्ष्य ही होती है।

(ख) इस प्रकार के अण्डो का और साधारण अण्डो का विश्लेषण करने से इनमे कोई भेद दिखाई नही देता।

(ग) इस बात का भी क्या विश्वास है कि इन अण्डों मे जीव नही होता। सम्भव है कि ऐसे अण्डों मे जो जीव होता है वह इतना शक्तिशाली न होता हो, जो पक्षी का रूप ग्रहण कर सके।

(घ) साधारणतया देखने से इन अण्डो व साधारण अण्डो में कोई भेद दिखाई नही देता, इसलिए खाने वाले इन अण्डो की पहचान कैसे करेंगे ? जब कोई व्यक्ति इन तथाकथित जीव रहित अण्डो का सेवन करने लगता है तो उसको अन्य साधारण अण्डो के सेवन करने मे भी कोई ग्लानि नही होती और वह अन्य साधारण अर्थात् जीव सहित अण्डे भी खाने लगता है।

इन तथ्यो को दृष्टि मे रखकर इन तथाकथित जीव-रहित अण्डो को शाकाहार मे नही माना जा सकता।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि दूध भी पशु के शरीर से निकलता है, इसलिए एक अहिंसक को दूध भी नही पीना चाहिए।

इस तर्क मे कुछ तथ्य अवश्य है। इसी कारण से यूरोप के देशो मे ऐसे कट्टर शाकाहारियो की सख्या बढती जा रही है, जो दूध का सेवन भी नही करते। परन्तु जैसा हम पहले भी कह चुके है दूध, मास व अण्डे बिलकुल भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। दूध जब पशुओ के स्तनो से निकलता है तब वह बिलकुल शुद्ध होता है। यद्यपि समुचित सावधानी न रखने से उसमे बाद मे बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर पर दूध का प्रभाव और मास व अण्डो का प्रभाव बिलकुल भिन्न-भिन्न होता है। दूध देने के बाद पशु को कोई कष्ट नही होता, अपितु उसे कुछ शान्ति का ही अनुभव होता है। क्योकि जो दूध उसके थनो मे इकट्ठा होता है वह यदि निकाला न जाये तो पशु को कष्ट होता है। दूध देने के पश्चात् पशु को उस दूध से कोई मोह नही रहता। इन सब तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए दूध को मासाहार में नहीं माना जा सकता।

फिर भी जो व्यक्ति दूध का त्याग कर सकते हैं उन्हे उसका त्याग अवश्य कर देना चाहिए। हमको ऐसे दूध का प्रयोग तो करना ही नही चाहिए जो पशुओ को कष्ट देकर और उनके बच्चो को भूखा रखकर प्राप्त किया गया हो।

(८) कुछ व्यक्ति कहते है कि भगवान् महावीर के समय मे जैन मुनि भी मासाहार करते थे। इस बात के समर्थन मे वे किन्ही द्वेषी लेखको की लिखी पुस्तको से दो-चार उद्धरण भी देते है।

इन व्यक्तियो का यह कहना केवल भ्रम है और एक गलत बात को सही ठहराने का कुप्रयास है। यह बात समझ मे नही आती कि जो जैन मुनि सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की भी रक्षा करने का प्रयत्न करते थे और उनकी हत्या करने को पाप बतलाते थे, वे मासाहार किस प्रकार कर सकते थे ? एक ओर तो वे अहिसा को परम धर्म बतलाते और दूसरी ओर हिंसा द्वारा प्राप्त मास का भक्षण करते तो उनके उपदेश का प्रभाव जन-साधारण पर कैसे पड सकता था ?—यह बात समझ मे आने वाली नही है। बडे-बडे इतिहासज्ञो ने यह स्वीकार किया है कि जैन मुनियो के उपदेशो और उनके तदनुसार आचरण के कारण ही भारत मे अहिसा धर्म का इतना अधिक प्रचलन हुआ और मासाहार मे कमी हुई।

जैन मुनियो द्वारा मासाहार न करने के समर्थन मे हम एक बार फिर बौद्ध ग्रन्थ 'मज्झिम निकाय महासीहनाद सुत्त १२' का हवाला देते हैं, जहा पर महात्मा बुद्ध ने कहा है, (जब वह जैन मुनि की अवस्था मे थे तब) " न मछली, न मास, न मदिरा, न सडा माड खाया'''मैं एक बूद पानी पर भी दयालु रहता था। क्षुद्र जीव की हिसा

भी मेरे द्वारा न हो इतना मै सावधान था।" यह सर्व-विदित है कि कुछ समय पश्चात् महात्मा बुद्ध ने इस कठिन मार्ग को त्याग कर मध्यम मार्ग अपना लिया था। उन्होने अपने अनुयाइयो को ऐसा मास खाने की आज्ञा दे दी थी, जो उनके लिये न बनाया गया हो। इस तनिक-सी छूट के कारण ही बौद्ध धर्मावलम्बी जी खोल कर मासाहार करते हैं।

वास्तव मे इन व्यक्तियो ने जिन शब्दो का मासपरक अर्थ कर लिया है वे द्वयर्थक शब्द हैं। आजकल उनका अर्थ मास माना जाता है, परन्तु प्राचीन शब्दकोषो के अनुसार उनका अर्थ फलो का विशेष भाग माना जाता है—जैसे फल के गूदे को आजकल गूदा कहते हैं, वही गूदा प्राचीन समय मे प्राचीन शब्दकोषो के अनुसार मास कहलाता था।

इस सम्बन्ध में हम वर्तमान काल का एक उदाहरण देते हैं। कुछ साल पहले तक कबाब केवल मास के ही बनाये जाते थे, परन्तु आजकल फल व सब्जियो के कबाब भी बनने लगे हैं। आधुनिक सभ्यता वाले परिवारो मे, जहा अभी तक मासाहार का प्रचलन नही हुआ है, इन फलों व शाको के बने कबाबो को फैशन समझ कर शौक से खाया जाता है और उन्हे कबाब ही कहा जाता है। इसी प्रकार फलो, सब्जियो व मिठाइयो को इस प्रकार काट कर व पका कर व सजा कर भोजन की थाली मे रखते हैं कि दूर से देखने पर वह मास ही प्रतीत होता है।

इन तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए यह कहना कि जैन मुनि मासाहार करते थे, उन पर मिथ्या आरोप लगाना है।

(६) आधुनिक इतिहासकार कहते हैं कि आज से हजारो वर्ष पहले मनुष्य असभ्य था। वह जगल मे रहता

था और पशु-पक्षियो को मारकर खाता था। कुछ काल के पश्चात् उसने पशु-पक्षियो को पेड पर उगे हुए फलो को खाते हुए देखा तो उसने भी उन फलो को चखा। वे फल उसको मास से भी अधिक स्वादिष्ट लगे तब उसने फलो को खाना प्रारम्भ कर दिया और मास का सेवन कम कर दिया। फिर कुछ काल और बीता। मनुष्य अधिक सभ्य हुआ और उसने फल उगाना व खेती करना सीख लिया। तब वह अनाज, फल व सब्जी उत्पन्न करने लगा। पशुओ का मास खाने के बजाय वह उनका दूध पीने लगा और उन पशुओ से अपना भारी काम कराने लगा। इस प्रकार जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य व सुसस्कृत होता गया वह मास का सेवन कम करता गया और शाकाहार का सेवन बढाता गया। इस प्रकार इतिहासकार बताते हैं कि मासाहार असभ्यता की निशानी है और शाकाहार सभ्यता की। यह कथन किसी शाकाहारी इतिहासकार का नही, अपितु मासाहारी इतिहासकारो का है। इसलिए यदि हम वास्तव मे सभ्य व सुसस्कृत बनना और कहलाना चाहते है तो हमको मासाहार का त्याग कर देना चाहिए।

देखने मे भी मास घिनौना और ग्लानि पैदा करने वाला दिखलाई देता है, जबकि फल देखने से ही आखो व मस्तिष्क मे ठण्डक व ताज़गी पहुचाते हैं। बेचने वाले भी फल-सब्जियो को सजा कर रखते है, जबकि मास को ढक कर। मास के लिये जहा पर पशुओ का बध किया जाता है वहा का दृश्य तो इतना वीभत्स और करुणाजनक होता है कि अधिकाश आदमी तो वहाँ खडे भी नही रह सकते।

एक बात और भी है, अग्रेजी न जानने वाले भी मास को मास न कह कर उसको मीट (Meat) कहते हैं। जिस

प्रकार मल विसर्जन के लिये आज कल लैट्रिन (Latrin) शब्द का प्रयोग बढता जा रहा है, उसी प्रकार मास के बजाय मीट कहने का रिवाज बढ़ता जा रहा है क्योंकि मल विसर्जन के समान मास भी घृणा सूचक शब्द है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से मांसाहार मनुष्यों के अनुकूल नहीं है

मास व अण्डो का मनुष्य के शरीर पर क्या प्रभाव पडता है और वह मनुष्य के लिये कितने हानिकारक हैं, इस सम्बन्ध मे डाक्टरो की राय जान लेना विशेष रुचिकर और ज्ञानवर्द्धक होगा।

मासाहार का मनुष्य के शरीर पर अनुकूल प्रभाव नहीं पडता। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति बीमार पडता है तो डाक्टर उसको मास व अण्डो का सेवन करना बन्द करा देते हैं और जब तक वह पूर्ण रूप से स्वस्थ नही हो जाता तब तक उसको शाकाहार पर ही रखते हैं।

डाक्टर रोबर्ट ग्रोस और प्रोफेसर इरविन डेविडसन ने लिखा है, "प्रत्येक मनुष्य के शरीर के खून मे लगभग २० ग्रेन कोलेस्ट्रोल नामक अल्कोहल पाया जाता है, जो कि दिल की बीमारी पैदा करता है। अगर किसी कारण से शरीर मे कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ जाये तो हाई ब्लड प्रेशर आदि कई भयकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। एक अण्डे की जरदी मे चार ग्रेन कोलेस्ट्रोल पाया जाता है। इसलिए अण्डे की जरदी मनुष्य के लिये हानिकारक होती है। अण्डे खाने से खून मे कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ जाती है। इस कोलेस्ट्रोल की काफी मात्रा हमारे जिगर मे जमा हो जाती है, फिर यह पित्त की थैली में पथरो को पैदा

करती है। यह कोलेस्ट्रोल रक्त मे मिलकर हृदय मे रक्त ले जाने वाली नाडियो मे जमा हो जाता है। इससे हाई ब्लड प्रेशर जैसी बीमारिया, दिमाग की बीमारिया, जिगर की बीमारी, गुरदे की सूजन, जोडो का दर्द आदि भयकर बीमारिया पैदा हो जाती है। इसके विपरीत फल व सब्जियो मे कोलेस्ट्रोल बिलकुल नही पाया जाता, अत शाकाहार ही सर्वश्रेष्ठ है।"

इन डाक्टरो ने आगे लिखा है कि "अण्डे मे नाइट्रोजन जैसी विषैली गैस तथा फास्फोरस एसिड की पर्याप्त मात्रा और चरबी होती है। इस कारण अण्डे शरीर मे तेजाबी मादा पैदा करते है, जिससे शरीर मे गैस की कई बीमारिया फूट पडती है।"

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय (अमेरिका) के कृषि विभाग ने १९६७ मे एक स्वास्थ्य बुलेटिन मे बताया था "अण्डे मे हानिप्रद विषाणु (वाइरस) होते हैं।"

केलीफोर्निया के दो वैज्ञानिको—डा० कैथरीन निम्मो तथा डा० जे० अमेन ने सिद्ध किया है—"अण्डे मे कोलेस्ट्रोल नामक विष पाया जाता है, जो हृदय रोग का एक प्रमुख कारण है। अण्डे खाने से उच्च रक्त चाप पैदा होता है और पाचन गडबड हो जाता है। यही नही, इससे गुर्दे मे पथरी बन जाती है, तथा आमाशय, आत और रक्त-नलिकाओ मे घाव हो जाते हैं। आमाशय और आतो के घाव तमाम रोगो के जीवाणुओ को रोग फैलाने का अवसर प्रदान करते है। घायल आतो मे पेचिश के कीटाणु पनपते हैं, अत पेचिश के लिए भी अण्डो का सेवन उत्तरदायी है। अण्डो का सेवन करने वालो की रोगो से बचने की शक्ति क्षीण हो जाती है।"

एक प्रसिद्ध डाक्टर ई० वी० मेककालम ने Newer Knowledge of Nutrition के पृष्ठ १७१ पर लिखा है, "अण्डो मे कैलशियम की बहुत कमी होती है और कार्बो-हाइड्रेट्स तो होते ही नही। इस कारण यह बडी आतो मे जाकर सडाध मारते हैं और सडने वाले कीटाणुओ को बढावा देकर भयकर बीमारियो को पैदा करते हैं।"

उन्होने इसी पुस्तक मे पृष्ठ ३६६ पर अपना एक अनुभव लिखा है, "कुछ बन्दरो को जब अण्डे खिलाये गये तो उनके शरीर मे सडाध पैदा करने वाले बैक्टीरिया पैदा होने लगे। वे बन्दर सुस्त हो गये। उन्होंने अपने सिरो को झुका दिया और वे बुद्धू से बन गये। उनका पेशाब रुक-रुक कर, सड कर व गहरे रग का आने लगा। जब उन्हे ग्लुकोज़ दिया गया तब वे फिर ठीक हो गये। इस प्रकार जैसे शाकाहारी बन्दरो आदि पशुओ को अण्डे माफिक नही आते, उन्हे बीमार कर देते हैं, उसी प्रकार शाकाहारी मनुष्य के लिए भी अण्डे कभी माफिक नही आ सकते।"

अनेक डाक्टरो का यह अनुभव है कि जब पशुओं को अण्डो की सूखी सफेदी खिलाई गई तो उनमे से कुछ को लकवा मार गया, कुछ को कैंसर हो गया और बहुतो को चर्म रोग हो गया। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि अण्डे का सबसे हानिकारक भाग अण्डे की सफेदी है।

लन्दन के एक बहुत प्रसिद्ध डाक्टर मि० हैग कहते हैं, "मास मे यूरिया और यूरिक एसिड नाम के दो बहुत ही भयानक विष पाये जाते हैं जो मनुष्य के शरीर में जाकर भयानक रोगो को उत्पन्न करते हैं।" उन्होंने लिखा है, "आगे लिखे प्रत्येक प्रकार के मास की आधा

किलो मात्रा लें तो काड मछली मे चार ग्रेन, यलीस मछली में छह ग्रेन, गाय की खाल मे सात ग्रेन, गाय की पसली मे आठ ग्रेन, सूअर की कमर तथा रान मे आठ ग्रेन, तुर्की मुर्गी मे आठ ग्रेन, चूजे मे नौ ग्रेन, गाय की पीठ तथा पीछे के अंग में नौ ग्रेन, गाय के भुने मास मे चौदह ग्रेन, गाय के यकृत में उन्नीस ग्रेन और मास के रस मे पचास ग्रेन यह भयकर विष पाया जाता है। दालो मे व वनस्पतियो मे इस विष की मात्रा बहुत ही कम अर्थात् न के बराबर ही होती है। पनीर, दूध से बने पदार्थों, चावल व गोभी आदि मे यूरिक एसिड बिलकुल भी नही पाया जाता।"

यही डाक्टर आगे लिखते हैं, "जब यह विष मनुष्य के रक्त में मिल जाता है तब यह विष दिमागी बीमारिया, हिस्टीरिया, सुस्ती, नीद का अधिक आना, सास रोग, जिगर की खराबी, अजीर्ण रोग, शरीर मे रक्त की कमी आदि बहुत सी बीमारियो को पैदा करता है। यह विष जब किसी गाठ या जोड मे रुक जाता है तो बात रोग, गठिया बाय, नाक और कलेजे की दाह, पेट के विभिन्न रोग, शरीर के विभिन्न दर्द, मलेरिया, निमोनिया, इन्फ्लुएजा और क्षय रोग उत्पन्न करता है।"

डाक्टर हैग और आगे लिखते हैं, "मास मे कैलशियम की बहुत कमी होती है और कार्बोहाइड्रेट्स के नितान्त अभाव के कारण मास पेट मे जाकर सडता है और अण्डे की तरह यह भी सडाध पैदा करने वाले कीटाणुओ को बढावा देता है, इससे गैस की भयंकर बीमारिया पैदा हो जाती हैं।"

डाक्टर जोशिया आल्डफील्ड डी० सी०, एम० ए०,

एम० आर०, सी० एल० आर०, सी० पी० सीनियर फिजीशियन मार्गरेट हॉस्पिटल, आमले का भी यही अनुभव है कि मांस, मछली व अण्डे अप्राकृतिक भोजन हैं। इनसे शरीर मे अनेक भयंकर बीमारिया जैसे कैंसर, क्षय, ज्वर, यकृत, मृगी, बात रोग, पादशोथ, नासूर आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

कोलगेट यूनिवर्सिटी (यू० एस० ए०) के एक वैज्ञानिक श्री ल्यार्ड ने अपने परीक्षणों के आधार पर लिखा है कि मास मे कैलशियम, कार्बोहाइड्रेट्स नही होते, इसलिए उसे खाने वाले चिडचिडे, क्रोधी, निराशावादी और असहिष्णु बन जाते हैं। शाकाहार मे कैलशियम और कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा काफी होती है, इसलिए शाकाहारी प्रसन्नचित्त, आशावादी, सहनशील व शान्तिप्रिय बनते हैं। कठिनाइया उनके साहस और धैर्य को बघाती है। वे नरक मे भी स्वर्ग के विचार रखते हैं।

दो अमेरिकी डाक्टरो डा० ए० वाचमन और डा० डी० एस० बर्नस्टीन ने सिद्ध किया है कि मासाहार से हड्डिया क्रमश कमजोर होती हैं और गलने लगती है। शाकाहारियो की हड्डिया मासाहारियो की अपेक्षा अधिक मजबूत होती है। डाक्टर अलेक्जेंडर हैक ने इस तथ्य की पुष्टि की है।

इग्लैण्ड के नगरो और गावो का निरीक्षण करने के पश्चात् मि० किग्सफोर्ड और मि० हेनरी ने लिखा है, "प्राचीन काल मे अग्रेज लोग अत्यन्त बलिष्ठ, स्वस्थ, सुगठित शरीर वाले और अधिक परिश्रमी होते थे, परन्तु जबसे उनके भोजन में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर मांस, मदिरा, अण्डे व मछली ने अधिकार कर लिया है तबसे

उनका स्वास्थ्य व शक्ति धीरे-धीरे घट रही है। पच्चीस वर्ष की अवस्था मे ही उनके शरीर का अध पतन हो जाता है। यह भी देखने मे आया है कि मासाहारी परिवारो के लडके-लडकियो का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ होता है। उनमे हृदयरोग व कैंसर की शिकायते पाई गई।" अपनी प्रजा के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर इगलैंड की सरकार की ओर से ब्रिटिश बोर्ड आफ एग्रीकल्चर ने समाचार पत्रो द्वारा एक लेख से अपनी अग्रेज प्रजा को चेतावनी दी थी —"मासाहार छोडकर उसके बदले दूध, पनीर और मसूर की दाल का प्रयोग करो, जो मास के समान शरीर मे मास पैदा करते है और मूल्य मे सस्ते हैं। शाक और फल-फूलादि का अधिक प्रयोग करो।"

मासाहार के भयकर परिणामो और ऐसी चेतावनियो के कारण पश्चिमी देशो मे सैकडो शाकाहारी सोसाइटियो की स्थापना हुई है और वहा के निवासी अधिकाधिक सख्या मे शाकाहार को अपनाते जा रहे हैं। कहा जाता है कि केवल अमरीका मे ही चार करोड व्यक्तियो से अधिक शाकाहारी है, और यह सख्या दिन-प्रति-दिन बढती जा रही है।

फ्रास के एक विद्वान श्री किंग्सन फोर्ड ने लिखा है—"यहा के लोगो का स्वास्थ्य और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा है।" अब वहाँ पर भी लोग शाकाहार की ओर बढ रहे है।

किम्बरलैंड के देहातो की अवस्था पर मि० स्माइल ने लिखा है—"जो व्यक्ति दूध, पनीर, फल, रोटी और सब्जियो का प्रयोग करते हैं वे मास-मदिरा का सेवन करने वालो से अधिक स्वस्थ, बलवान और परिश्रमी पाये जाते हैं।"

मैक्सिको के निवासी साधारण अनाज की रोटियो और फलो का सेवन करते हैं, परन्तु वे शरीर से इतने शक्तिशाली होते हैं कि मास का सेवन करने वाले मजदूर उनका किसी प्रकार भी मुकाबला नही कर सकते। इन शाकाहारियो की शक्ति को देख कर आश्चर्य होता है।

माल्टा के निवासी बहुत मोटे-ताजे होने पर भी खूब बलवान होते हैं, क्योकि वे लोग सब्जी, फल व रोटी का सेवन करते है।

अमरीका के विद्वान श्री चैस ने स्मरना निवासियो के सम्बन्ध मे लिखा है कि वे बहुत मजबूत व बलवान होते हैं। वहा का एक-एक आदमी पाच-पाच मन वजन तक का बोझा उठा सकता है इसका कारण यही है कि वे लोग फल और बहुत साधारण भोजन करते हैं।

कप्तान सी० एफ० ने हस्तपानिया में मूर के मजदूरो की दशा देखकर लिखा है कि इनके शरीर मे शक्ति होती है और वे बडा भारी बोझ उठाते हैं। कारण कि वे लोग गेहू की रोटियो के साथ अगूर खाते हैं।

डा० ब्रुक ने नार्वे के लोगो के विषय मे लिखा है कि वे सदा प्रसन्नचित्त, दीर्घायु और स्वस्थ पाये जाते है कारण कि वे लोग मास व अण्डो से बडी सख्त घृणा करते हैं।

यूनान के एक समाचारपत्र ने लिखा है कि जबसे यहा के निवासियो ने शाकाहार छोडकर मास-मदिरा का सेवन शुरू कर दिया है तबसे यूनान के लोग सुस्त और निकम्मे-पन के लिए प्रसिद्ध हो रहे है। इन लोगो को चाहिए कि स्वास्थ्य के लिए मास-मदिरा रहित भोजन, हरी सब्जी, फल, मेवे, अनाज व दूध का सेवन करे।

डाक्टर आनन्द निमल सूरिया ने खोज के पश्चात्

लिखा है कि मांस पशु-पक्षियो को तडपाकर मारने पर मिलता है। जब पशु-पक्षियो को निर्दयता से मारा जाता है तब वह तडपते हैं, दुखी होते हैं और भयभीत होते हैं। ये बुरी भावनाए उनके शरीर में रासायनिक परिवर्तन करके उनके मास व खून को अम्लोत्पादक बना देती हैं। इसके अतिरिक्त मरे हुए पशुओ की रक्तनली के विषैले पदार्थ प्रोटीन को गन्दा कर देते है। डाक्टर साहब आगे लिखते हैं कि उन्होने मरे हुए व मारे हुए पशुओ के मृत शरीरो को Microscope से देखा है, जिससे मालूम पडा है कि उनकी बडी आतें विषैले कीटाणुओ से भरी पडी हैं। मास को उबालने पर भी खुर्दबीन से परीक्षण करने पर उसमे बहुत सारे भयकर कीटाणु पाये गये, जो शरीर मे सैकडो बीमारिया पैदा करते हैं। इसलिए शुद्ध व बढिया प्रोटीन तो दालो, अनाजो व दूध मे ही पाया जाता है।

यहा एक बात और विचारणीय है। मासाहारी व्यक्ति केवल शाकाहारी पशुओ—यथा भेड, बकरी, गाय, ऊट, मछली, मुर्गे आदि का ही मास खाते है। मासाहारी पशुओ—यथा शेर, चीते, भेडिये आदि का मास कोई नही खाता, क्योकि इन मासाहारी पशुओ का मास विषैला होता है। इस तथ्य से भी यह स्पष्ट है कि मासाहार हमारे शरीर मे विष पैदा करता है, जबकि शाकाहार हमारे शरीर को शुद्ध रखता है।

'वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइज़ेशन' की विशेष समिति ने सर्वेक्षण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि २२ विकसित और समृद्ध देशो मे जहा कि मुख्य रूप से मासाहार किया जाता है, प्रति एक लाख व्यक्तियो मे ४०० से अधिक व्यक्ति हृदय रोगो से मरते हैं। यह सख्या फिनलैण्ड मे सबसे

अधिक अर्थात् ४२२ है, जबकि एशियाई देशो में अपेक्षाकृत बहुत कम है। जापान में १ लाख व्यक्तियो मे सिर्फ ५१ व्यक्ति हृदय रोगो से मरते हैं। सौभाग्य से यह सख्या भारत मे अभी ४२ तक ही पहुची है और निश्चय ही इसका श्रेय भारत की शाकाहारी पद्धति को है।

इन कारणों के अतिरिक्त सर्वेक्षणो से यह तथ्य भी प्रकाश मे आया है कि जिन विकसित और समृद्ध देशो मे जितनी अधिक मोटर कारें हैं और वहा के निवासी जितनी अधिक सिगरेटे पीते हैं, दिल के दौरे के रोगी वहा उतने ही अधिक हैं।

जर्मन के एक प्रसिद्ध विद्वान मि० हैकल ने लिखा है कि जहा तक परीक्षा से मालूम हुआ है मनुष्य और वनमानुष के शरीर की बनावट आपस मे मिलती है। हमारे शरीर की भाति उसके भी हड्डियाँ व नसें होती हैं। मनुष्य के आमाशय मे पाचन क्रिया के लिए जो विशेषता पाई जाती है वही वनमानुष मे भी होती है। वनमानुष फल और शाक-सब्जी खाते है अत मनुष्य का भी यही आहार होना चाहिए। इसी कारण मनुष्य प्राकृतिक रूप से शाकाहारी है, मासाहारी नही।

फ्रास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पियर गेसेण्डी का कहना है कि मनुष्य के जीवन का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् मैं यह निर्णय दे सकता हू कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी है।

बहुत से अन्य विद्वानो, डाक्टरो, वैज्ञानिको तथा शरीर-शास्त्र के ज्ञाताओ ने विचार व्यक्त किए हैं कि मनुष्य के दाँत, नाखून, शारीरिक ढाचा, जबड़ा, आतें तथा पाचन यन्त्र और उसके खाने-पीने के ढग को देखकर निर्विवाद कहा जा सकता है कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी

है, यहा यह बता देना उपयोगी होगा कि प्रकृति ने शाकाहारी प्राणियों को लगभग १५ मीटर लम्बी आत प्रदान की है जबकि मासाहारियो की आत छोटी होती है।

एक बात और, जो व्यक्ति हृदयहीन होकर एक निर्बल और मूक पशु की गर्दन पर छुरी चलाता है, उसको तडप-तडप कर मरते हुए देखता है, वह इतना निर्दयी हो जाता है कि वह मनुष्य को भी पशु से अधिक नही समझता और स्वार्थवश मनुष्य की हत्या करते हुए भी उसको कोई झिझक नही होती। इसी कारण मासाहार की अधिकता के साथ-साथ मनुष्यो की हत्याए भी बढती जा रही है।

एक प्रश्न यह उठता है कि हम मासाहार क्यो करे ? जब हम अनाज, फल, सब्जी, मेवे उत्पन्न कर सकते हैं तब मासाहार का आधार ही क्या रह जाता है ? जिस प्रदेश मे अनाज का उत्पादन कम होता है या नही होता है, आज के युग मे वहा भी दूसरे स्थानो से बहुत आसानी से अनाज भेजा जा सकता है। फिर जहा पर अनाज प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होता है वहाँ का तो कहना ही क्या है। क्या हम केवल जिह्वा के स्वाद के लिए निर्बल व मूक प्राणियो की हत्या करते रहे ? परन्तु मास स्वयमेव मे इतना स्वादिष्ट नही होता, उसमे स्वाद तो घी व मसालो द्वारा पैदा किया जाता है। अतएव हम शाकाहार को भी बहुत अधिक स्वादिष्ट बना सकते है। फिर समझ मे नही आता कि मासाहार करने मे क्या तुक व अच्छाई है ?

इस पुस्तक के अन्त मे हम विभिन्न पदार्थों के पौष्टिक तत्वों का तुलनात्मक चार्ट दे रहे हैं, जिससे तत्काल पता चल जाता है कि अनाज, फल व मेवे आदि मास, मछली व अण्डो से कितने अधिक शक्तिवर्द्धक व गुणकारी हैं।

हमारा भोजन

अब हम अपने प्रति दिन के भोजन के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे। भोजन का हमारे स्वास्थ्य व अहिंसा धर्म से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि हम अपनी प्रकृति के अनुकूल, शुद्ध व ताज़ा भोजन सेवन करेंगे तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा। इसी प्रकार यदि हम भोजन के सम्बन्ध मे उचित सावधानी बरतें तो हम बहुत सी अनावश्यक हिंसा से भी बचे रहेगे। अधिकतर ऐसा होता है कि भोजन को, आंखो को सुन्दर दिखने वाला और जिह्वा को स्वादिष्ट लगने वाला बनाने के लिये हम अनजाने मे ही उसके पोषक तत्त्व नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार हम कई बार शाकाहारी भोजन को भी मासाहारी बना लेते हैं।

हम भोजन क्यों करते हैं ?

भोजन करने का मुख्य उद्देश्य हमारी भूख की तृप्ति करके हमे अपने कार्य करने और जीवित रहने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त करना है। जो व्यक्ति जितना अधिक शारीरिक कार्य करता है उसकी उतनी ही अधिक शक्ति नष्ट होती है और उस नष्ट हुई शक्ति को पूरा करने के लिये उसको उतने ही अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। इसीलिए जो व्यक्ति अधिक शारीरिक कार्य करते हैं वे अधिक मात्रा मे भोजन सेवन करते हैं।

परन्तु हम भोजन सेवन करने के इस मूल उद्देश्य को भूल गये हैं। हम केवल भूख शान्त करने के लिये ही नहीं,

अधिकतर स्वाद लेने के लिये ही दिन भर कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। इसीलिये हम चाट, पकोडी, मिठाई आदि खाते रहते हैं और कोकाकोला, चाय, काफी आदि पीते रहते हैं। अनेको बार ऐसा होता है कि हमको भूख नही होती, फिर भी हम भोजन कर लेते हैं, क्योकि भोजन करने का समय जो होता है। हमारी आखो को सुन्दर लगे और हमारी जिह्वा को स्वादिष्ट लगे, इसलिये हम भोजन को विभिन्न प्रकार से विकृत कर देते हैं। यह सब करते हुए हम यह नही सोचते कि इस प्रकार के विकृत पदार्थ सेवन करने और बिना भूख ही सेवन करने से हमारे स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पडेगा? इसका स्वाभाविक परिणाम यही होता है कि हम अपना स्वास्थ्य खराब कर लेते है और फिर औषधियो के भरोसे ही अपना जीवन बिताते है। भोजन के सम्बन्ध मे की गई इस प्रकार की अनियमितता के परिणामो को देखते हुए प्राकृतिक चिकित्सक इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि ससार मे भोजन न मिलने (अर्थात् भुखमरी) से जितने व्यक्ति मरते हैं, उनसे सैकडो गुने अधिक व्यक्ति विकृत, अप्राकृतिक तथा आवश्यकता से अधिक भोजन के सेवन से मरते है। उनका यह भी कहना है कि दुर्घटनाओ को छोडकर कम-से-कम पचहत्तर प्रतिशत रोग पेट की खराबी के कारण से होते है और पेट की खराबी हमारे भोजन की गलत आदतो का ही परिणाम है।

हम आपके सामने कुछ तथ्य रखते हैं :—

यदि हम समुचित देखभाल रखे तो हम गेहू को साल-डेढ साल तक बहुत अच्छी दशा मे रख सकते हैं।

यदि हम गेहू का आटा पिसवा लें तो उस आटे को अधिक समय तक अच्छी दशा मे नही रख सकते। डेढ-दो

महीने मे ही उसके गुण नष्ट हो जायेंगे और वह खाने योग्य नही रहेगा।

यदि हम आटे का भोजन, मिठाई आदि बना लें तो वे खाद्य पदार्थ अधिक-से-अधिक चार-पाच दिन सेवन करने योग्य रह सकते हैं।

यदि हम आटे में पानी मिलाकर उसको उसनकर रख दे तो वह कुछ घण्टो के बाद ही खराब होने लगेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी प्राकृतिक दशा में गेहू बहुत समय तक ठीक रह सकता है। परन्तु जैसे-जैसे हम उसका रूप बदलते जाते हैं, उसकी ठीक अवस्था मे रहने की अवधि तथा उसके गुण कम होते जाते है।

इसी प्रकार यह भी एक सर्वविदित तथ्य है कि कोई खाद्य पदार्थ जब बिलकुल सादा व अकेला सेवन किया जाता है तो वह जल्दी ही पच जाता है और शरीर को पोषण भी अधिक देता है। परन्तु यदि हम कई खाद्य पदार्थ एक साथ मिलाकर खाये तो वे गरिष्ठ हो जाते है, देर में पचते हैं और उनके पोषक तत्त्वो मे भी कमी हो जाती है। इसीलिए वैद्य और डाक्टर निर्बल और रोगी व्यक्तियो को सादा भोजन करने की राय देते हैं।

इन तथ्यो को दृष्टि मे रखकर यदि हम अपने प्रतिदिन के भोजन की आदतो मे आवश्यक सुधार कर ले तो हम कम व्यय मे अधिक पोषक व स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन प्राप्त कर सकते है। इस सम्बन्ध मे हमे निम्नलिखित बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

हमारे शरीर की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताए चौबीस घण्टो में एक बार भोजन करने से ही पूरी हो सकती हैं। फिर भी, जो व्यक्ति ऐसा करने में असमर्थ हों वे दिन मे

दो बार भोजन ले सकते हैं। प्रात सूर्य निकलने के एक घण्टे बाद से लेकर सध्या को सूर्य छिपने से एक घण्टा पहले तक हमको अपना भोजन कर लेना चाहिए। इस समय के अतिरिक्त अन्य समय मे तथा बिना भूख लगे भोजन कभी नही करना चाहिए। जब व्यक्ति स्वस्थ होता है तो उसको अपने आप ही खुलकर भूख लगती है। खुलकर भूख न लगना पेट मे किसी-न-किसी प्रकार की गडबडी का सकेत है। हमको पेट भरकर तथा ठूस-ठूसकर कभी नही खाना चाहिए। सदैव ही भूख से एक रोटी कम खानी चाहिए। चौबीस घण्टो मे दो बार से अधिक भोजन करने, ठूस-ठूसकर खाने तथा बिना भूख भोजन करने का परिणाम अपने पैसे को व्यर्थ खोना और बदले मे बीमारी मोल लेने के समान है। कुछ दिन हुए एक पत्रिका मे पढा था कि पटना मे एक ऐसा परिवार है, जिसके सदस्य कई वर्ष से, बिना भोजन के, केवल पानी पीकर ही, अपना जीवन-यापन कर रहे है। कहने का तात्पर्य यही है कि जीवित व स्वस्थ रहने के लिये अधिक भोजन करना आवश्यक नही है।

हमारी एक गलत आदत यह भी है कि हम भोजन गरम-गरम खाते है और पानी ठण्डा पीते हैं। इसके विपरीत हमको चाहिए कि भोजन ठण्डा खाये और पेय पदार्थ गरम-गरम पियें। तात्पर्य यह है कि दाल, रोटी, सब्जी आदि ठण्डे (फ्रीज़ मे रखकर नही) सेवन करने चाहिए और पानी, दूध आदि सुहाते हुए गरम पीने चाहिए। इस प्रकार भोजन सेवन करने से हम स्वस्थ रहेगे और बहुत से रोगो से भी बचे रहेगे।

जहा तक सम्भव हो खाद्य पदार्थों को उनके प्राकृतिक रूप मे ही सेवन करना चाहिए। केवल स्वादिष्ट बनाने

और उनका रूप-रग सुन्दर बनाने के लिये ही हमे इन खाद्य पदार्थों को विकृत नही करना चाहिए। अग्नि पर पकाने और उनमे घी, मसाले व रग डालने से खाद्य पदार्थों के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं और वे केवल जले हुए कोयले के समान रह जाते है। अपनी प्रकृति, रुचि व मौसम के अनुकूल हमको अधिक-से-अधिक मात्रा मे फलो व सब्जियों का सेवन करना चाहिए। जो फल व सब्जी अपनी प्राकृतिक दशा मे ही खाई जा सके उनको न तो पकाना चाहिए और न उनमे मसाले डालने चाहिए।

मास, अण्डा तथा मदिरा, अफीम, चरस, भग जैसे मादक द्रव्य और बीडी, सिगरेट, हुक्के आदि का सेवन तो हमे भूलकर भी नही करना चाहिए। ये सब पदार्थ इनके सेवन करने वालो के विवेक को हरने के साथ-साथ उनको अनेको रोग लगा देते है। इनके सेवन से हिंसा का दोष तो लगता ही है। इसी प्रकार पुराने अचार, मुरब्बे, खमीरे तथा शहद, आसव, सिर्का, पनीर, खमीर, कई दिनो की बासी मिठाई आदि पदार्थ भी हमे नहीं खाने चाहिए। क्योकि इन पदार्थों मे निरन्तर ही सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। ये सूक्ष्म जीव चाहे आखो से दिखाई न दे, परन्तु यदि बहुत शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से देखें तो ये जीव हमको दिखाई दे जायेंगे। इसलिए इन पदार्थों के सेवन से हिंसा का दोष लगता है और कभी-कभी ये हमारे स्वास्थ्य को हानि भी पहुचा देते हैं।

हमको बनस्पति घी का प्रयोग बिलकुल भी नहीं करना चाहिए। यह मनुष्यो के स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। तेलो के रग और उनकी गन्ध दूर करने के लिए तथा उनको जमाने के लिए जो रसायन इन तेलो में मिलाये जाते

हैं और जो रासायनिक प्रक्रिया उन पर की जाती है, उसके कारण वे मनुष्यो के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाते हैं। यदि हम शुद्ध घी का प्रबन्ध नही कर सकें तो वनस्पति घी के स्थान पर हमे शुद्ध तेलो का प्रयोग करना चाहिए। शुद्ध तेल हमारे स्वास्थ्य को हानि भी नही पहुचाते और पौष्टिक भी होते हैं।

इसी प्रकार मिलो की बनी हुई दानेदार चीनी भी मनुष्यो के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है, क्योकि सफेद करने के लिए इसमे भी हानिकारक रसायन मिलाये जाते हैं। आजकल बढता हुआ मधुमेह (शुगर की बीमारी) इसी चीनी की देन है। इसके स्थान पर हमको शुद्ध गुड व खाड का सेवन करना चाहिए।

ब्रिटेन के बीस पोषक तत्व विशेषज्ञ डाक्टरो ने चीनी के सम्बन्ध मे जो रिपोर्ट पेश की है, वह उन लोगो की आखें खोल देने वाली है जिन्हे चीनी खाने का बेहद शौक है और जो उसे पोषक तत्व समझते है। मधुमेह के डर से एक खास आयु के बाद चीनी कम खानी चाहिए, यह तो आम तौर से कहा जाता था, परन्तु वह शरीर मे विभिन्न रोगो को जन्म देने वाली तथा स्वास्थ्य पर घातक प्रहार करने वाली है, इसका पता इस रिपोर्ट से ही चलता है। उनके अनुसार चीनी मोटापा बढाने तथा गठिया, अल्सर, मधुमेह, हृदय-रोग और त्वचा तथा दातो के रोग पैदा करने के सिवा और कुछ नही करती। उनका यह कहना है कि यदि आज का आदमी अधिक चीनी खाने की आदत छोड दे, तो अब से अधिक स्वस्थ रह सकता है।

आजकल बाजारो मे पिसा हुआ नमक मिलता है। यह भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है क्योकि नमक को साफ

करने के लिए इसमे भी ऐसे ही स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक रसायन मिलाये जाते हैं।

बहुत से उच्च कोटि के डाक्टर तो इन पदार्थों को सफेद विष (White Poison) कहते हैं, जो मनुष्यों की तिलतिल करके जान ले लेते है।

इसी प्रकार मिलो मे साफ किये और पालिश किये हुए चावलो के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। अत. जहाँ तक सम्भव हो हमे हाथ से ही साफ किये हुए चावलो का सेवन करना चाहिए। गेहू के मैदे मे भी पोषक तत्व नही रहते। इसके अतिरिक्त इस मैदे से बने हुए खाद्य पदार्थ गरिष्ट हो जाते है और हमारे पेट को खराब करते हैं। पूरा पोषण प्राप्त करने के लिये हमे बिना छाने चोकर सहित आटे का ही प्रयोग करना चाहिए।

चाय, काफी, कोका कोला आदि पेय पदार्थ भी हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। शुरू-शुरू में तो मनुष्य, फैशन समझ कर मित्रो के साथ ऐसे कई तरह के पेय पदार्थ पीते है, परन्तु कुछ दिन के पश्चात् ही, इनमे अल्कोहल मिले होने के कारण, वे इनके आदी हो जाते हैं। कुछ दुकानदार भी अपना माल बेचने के लिये इन पेय पदार्थों मे कोई मादक द्रव्य डाल देते हैं, जिससे ग्राहकों को उन्ही दुकानदारो के बनाये हुए पेय पदार्थ पीने का चस्का लग जाता है, जो अन्तत स्वास्थ्य को हानि पहुचाते हैं।

बाजार के पिसे हुए मसाले व आटा तथा बाजार की बनी हुई मिठाई, चाट, पताशे आदि भी खाने योग्य नही होते। क्योंकि दुकानदार अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिये, इन वस्तुओ को बनाने के लिये, घटिया से घटिया

खाद्य पदार्थ प्रयोग मे लाते हैं, क्योकि वे सस्ते मिल जाते है। वे ये वस्तुए ऐसे गन्दे तरीको से और ऐसे गन्दे स्थानो पर तैयार करते है कि देखने मे भी ग्लानि होती है। इसके साथ-साथ बाजार के पिसे हुए मसालो व अन्य खाद्य पदार्थों मे मिलावट भी बहुत पाई जाती है। इनमे लकडी का बुरादा, पत्थर का चूरा, घोडे की लीद, पीली मिट्टी आदि जैसे हानिकारक पदार्थ मिलाये जाते हैं। खाने के तेलों मे खनिज तेल मिला देते हैं। ये पदार्थ हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर देते है और हमारे जलन्धर, पेचिश, लकवा आदि जैसे भयानक रोग पैदा कर देते हैं। इस प्रकार के मिलावटी खाद्य पदार्थ खाने से प्रति वर्ष हजारो व्यक्तियो की मृत्यु हो जाती है। अत जहा तक सम्भव हो हमे घर पर ही शुद्ध, साबुत खाद्य पदार्थ लाकर उनको साफ करके स्वय ही पीस-कूट कर प्रयोग करने चाहिए।

हमे सप्ताह मे कम से कम एक दिन का उपवास रखना चाहिए। उस दिन केवल सुहाता-सुहाता गरम पानी पीना चाहिए। ऐसा करने से सप्ताह भर मे जो गन्दगी हमारे पेट मे इकट्ठी हो जाती है वह साफ हो जाती है। यदि हम पूरे दिन का उपवास न भी कर सकें तो सप्ताह मे एक समय का भोजन तो अवश्य ही छोड देना चाहिए।

भोजन सेवन करने के सम्बन्ध मे हमे इस सूत्र से काम लेना चाहिए। जिस प्रकार हम अपने सेवक को कम-से-कम वेतन देकर उससे अधिक से अधिक काम लेना चाहते हैं, उसी प्रकार हमको भी अपने पेट को कम-से-कम भोजन देकर अपने शरीर से अधिक-से-अधिक काम लेना चाहिये। इस सूत्र पर चलने से हम कदाचित् ही बीमार पडे।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि ससार में जितने पाप

होते हैं वे अधिकतर पेट की खातिर होते हैं। परन्तु यह बात मिथ्या है। ऊपर लिखे अनुसार यदि हम अपनी भोजन सम्बन्धी आदतें सुधार लें तो कम-से-कम पेट भरने के लिये हमे कोई पाप नहीं करना पडे। हम ईमानदारी से ही अपने और अपने आश्रितो के भरण-पोषण योग्य कमा सकते हैं। पेट तो साधारण और सस्ते भोजन से भी भर सकता है और मूल्यवान पकवानो से भी। पेट कभी नहीं कहता कि मुझे भाति-भाति के स्वादिष्ट भोजन खिलाओ। इसके विपरीत गरिष्ठ भोजन के सेवन से तो पेट को उसको पचाने के लिए अधिक परिश्रम करना पडता है। अधिकाश मे गरिष्ठ भोजन के सेवन से पेट खराब भी हो जाता है। वास्तविक दोषी तो हमारी तृष्णा और स्वाद लेने की लालसा है। यदि हम इनको अपने वश मे कर ले तो अपने जीवन निर्वाह के लिये हमे कोई भी अनुचित साधन न अपनाने पडें। ग्रास जब तक मुंह मे नही जाता तब तक हमे भोजन के स्वाद का पता नही चलता और ग्रास के गले से नीचे उतरने के पश्चात् भी भोजन के स्वाद का प्रश्न नही उठता। इस जिह्वा के क्षण भर के स्वाद के लिये ही हमे सब उचित व अनुचित कार्य करने पडते है। इसलिये यदि हमे सुख और शान्ति से जीना है तो हमे अपनी जिह्वा को अपने वश में रखना चाहिये।

खाद्य पदार्थ खराब क्यो होते हैं?

सारे ससार में बहुत ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु भरे हुए हैं, जिनको हम बैक्टीरिया (Bacteria) भी कह सकते हैं। अनुकूल परिस्थितिया मिलते ही यह बहुत शीघ्रता से बढते हैं। यदि हमारे खाद्य पदार्थों मे इन बैक्टीरिया जीवों का प्रवेश हो जाये तो ये बहुत शीघ्रता से और बहुत बडी

सख्या में बढ़कर खाद्य पदार्थों को खराब कर देते हैं। इन्हीं के कारण कुछ दिन के रखे हुए खाद्य पदार्थों का रग व स्वाद बदल जाता है, उनमे दुर्गन्ध आने लगती है और अन्तत. वे सडने लगते हैं। इन्ही बैक्टीरियाओ से सुरक्षित रखने के लिये खाद्य पदार्थों को हवा बन्द डिब्बो मे, रेफ़रीजरेटरो में तथा ठण्डे गोदामो मे रखा जाता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियो मे इन बैक्टीरियाओ की वृद्धि शीघ्रता से नही हो पाती और खाद्य पदार्थों को कुछ अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। थोडा सा मैल का आधार मिलने पर भी ये बैक्टीरिया बहुत शीघ्रता से बढते है। हमारे पूर्वजो को इन जीवाणुओ का ज्ञान था, इसीलिये वे खाद्य पदार्थों की शुद्धता तथा अपने शरीर, अपने वस्त्रो और रसोई के बर्तनो व रसोई के स्थान की पवित्रता पर इतना अधिक ध्यान देते थे। परन्तु बाद मे हम तत्त्व की बात तो भूल गये और यह छुआछूत एक रूढि सी बनकर रह गयी। इसी कारण नई पीढी इस छुआछूत को दकियानूसी की सज्ञा देने लगी। अत हमे खाद्य पदार्थों की शुद्धता पर विशेष ध्यान देना चाहिए और उनको बैक्टीरिया के प्रवेश से यथाशक्ति बचाना चाहिये। ऐसा करने से हम स्वस्थ भी रहेगे और हिंसा के दोष से भी बचे रहेगे।

बुरी आदतों से छुटकारा पाने का उपाय

कुछ व्यक्ति यह पूछते है कि हमको जो बुरी आदते पड़ गयी हैं, उनसे छुटकारा कैसे पाया जाय ?

इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि कोई भी आदत ऐसी नहीं होती जिससे छुटकारा पाना सम्भव न हो। केवल व्यक्ति की इच्छा होनी चाहिये। बुरी आदतो से छुटकारा

पाने के लिए सबसे प्रथम दृढ निश्चय की आवश्यकता है। जब तक हममे प्रबल इच्छा-शक्ति—दृढ़ निश्चय—नही होगा, तब तक हम कुछ भी नही कर सकेगे। एक बार किसी भी बुरी आदत को छोडने का दृढ निश्चय करने के बाद हमे उस पर प्रत्येक दशा मे दृढ रहना चाहिए, चाहे हमारे मार्ग मे कितनी भी रुकावटें व प्रलोभन क्यो न आयें। बुरी आदतो को छोडने का सबसे सरल उपाय यह है कि हमें कोई सीमा बाध लेनी चाहिए। मान लिया कोई व्यक्ति एक दिन में लगभग बीस सिगरेट पीता है। वह सिगरेट पीना छोडना चाहता है। उसको यह निश्चय कर लेना चाहिए कि मैं आज पन्द्रह सिगरेट ही पीऊँगा। वह गिन-कर पन्द्रह सिगरेट ही अपने पास रखे, न तो और खरीद कर पिये और न किसी अन्य व्यक्ति के देने पर ही पिये। जब भी उसका मन सिगरेट पीने को हो, वह तभी यह सोचे कि आज तो केवल पन्द्रह सिगरेट ही पीनी हैं, इस-लिए थोडी देर बाद पिऊँगा। इसके बदले वह अपने मुंह मे सौंफ, इलायची, सुपारी, मीठी गोली आदि ऐसी ही कोई वस्तु डाल ले। ऐसा करने से वह दिन भर मे पन्द्रह के बजाय दस, बारह सिगरेट ही पी सकेगा। इसी प्रकार सीमा कम करते रहने से कुछ ही दिनो मे उसकी यह बुरी आदत छूट जायेगी। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति बाजार की बनी हुई चाट, पकौडी, मिठाई आदि छोडना चाहे तो उसके लिए भी यही प्रयोग किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपने भोजन को नियमित व सीमित करना चाहे तो भी उसको इसी प्रयोग पर चलना चाहिए। इस प्रकार दृढ निश्चय करने से और इस प्रयोग पर चलने से व्यक्ति अपनी पुरानी से पुरानी बुरी आदतो को छोड़ सकता है।

छोटे-छोटे रोग

आज हमारी एक बुरी आदत यह भी बन गयी है कि हम तनिक सा भी कोई रोग, जैसे सिर दर्द, पेट दर्द, हलका बुखार, जुकाम आदि होने पर या तो डाक्टरो के पास भागे जाते है या कोई पेटेण्ट औषधि खा लेते हैं। परन्तु यह आदत ठीक नही है। इस प्रकार दवाइयो का सेवन करते रहने से हम अपने शरीर की, रोग के आक्रमण को रोकने तथा रोग हो जाने पर उस रोग से लडकर उसे दूर करने की, जो प्राकृतिक शक्ति है, उसको क्षीण करते रहते हैं। और अन्तत यह प्राकृतिक शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि हमारा जीवन केवल औषधियो पर ही निर्भर होकर रह जाता है। एक बात और भी है, आजकल कुछ एलोपैथिक दवाइयाँ ऐसी बन रही हैं कि यदि कोई व्यक्ति थोडे दिनो तक उस दवाई को लेता रहे, तो वह दवाई उसके लिये प्रभावहीन हो जाती है और फिर बीमार पडने पर वह व्यक्ति उस दवाई से ठीक नही हो पाता। उसको और भी अधिक शक्ति (Potency) की दवाई लेनी पडती है, और फिर कुछ दिन बाद उससे भी अधिक शक्ति की। इस प्रकार अन्तत एक दिन ऐसा आ जाता है जब उस व्यक्ति का रोग लाइलाज हो जाता है। कुछ औषधिया (Wonder Drugs) तो इतनी अधिक शक्तिशाली होती है कि वे जीवन मे केवल एक बार ही ली जा सकती हैं। यदि एक बार वह औषधि सेवन कर ली, और फिर दुबारा बीमार हो गये तो कोई भी औषधि, रोगी पर अपना प्रभाव नही दिखा

सकती। यदि हमको ऐसी कठिन परिस्थितियो से बचना है तो हमे छोटे-छोटे रोगो के लिए औषधियो पर निर्भर रहना छोडना होगा। तथ्य यह है कि आकस्मिक दुर्घट-नाओ को छोड़कर कम-से-कम पचहत्तर प्रतिशत रोग ऐसे हैं जो हमारे गलत खान-पान और गलत रहन-सहन के कारण से ही होते हैं। यदि हम अपना खान-पान और रहन-सहन अपनी प्रकृति तथा देश व काल के अनुकूल रक्खे तो हमे रोगो के आक्रमण का कोई भय नही रहेगा। साधारण रोग होने पर हमको, दो-चार दिन के लिये, अपने खान-पान मे थोडी सावधानी बरत लेनी ही पर्याप्त है। हमको यह याद रखना चाहिए कि ये छोटे-छोटे रोग प्रकृति की ओर से चेतावनी होते हैं कि हम गलत दिशा मे जा रहे हैं। यदि हमने इन चेतावनियो पर ध्यान नही दिया तो हम बडे रोगो के चगुल मे फँस जायेगे। सब से बढिया औषधि तो यह है कि तनिक-सी तबियत खराब होते ही हम एक समय का, एक दिन का अथवा दो दिन का भोजन छोड दें और इस अवधि मे साधारण गुनगुना पानी पीते रहे। उस गरम पानी मे नीबू का रस निचोड ले, तो और भी अधिक अच्छा रहे। ऐसा करने से पेट मे जो भी गन्दगी इकट्ठी हो गयी है, वह साफ हो जायेगी और पेट को भी एक-दो दिन के लिये आराम मिल जायेगा। यदि ऐसा करने से भी पेट साफ न हो, तो हमे गरम पानी का एनीमा ले लेना चाहिए। जुलाब की दवाई लेना अच्छा नहीं होता। इसके साथ-साथ दो-चार दिन के लिये हम अपने आहार मे भी कुछ परिवर्तन कर सकते हैं। इस आसान, बिना पैसे के और बिल्कुल सुरक्षित इलाज के बजाय हम जरा-सी तबि-यत खराब होने पर ही, पेट को साफ करने के बजाय,

तरह-तरह की दवाइयो के रूप में और भी अधिक विष व गन्दगी पेट में भरते रहते हैं, जिसका परिणाम हम सबके सामने है। आपने यह अवश्य देखा होगा कि जो व्यक्ति प्रकृति के अनुकूल चलते हैं, वे अधिकाश मे स्वस्थ ही रहते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति प्रकृति के प्रतिकूल चलते हैं और औषधियो पर निर्भर करते हैं, वे सदैव रोगी ही रहते हैं।

वनो मे स्वच्छन्द व स्वतन्त्र विचरने वाले पशु-पक्षियो को किसी ने कदाचित् ही कभी बीमार देखा हो। वे अपनी प्रकृति के अनुकूल ही भोजन सेवन करते है। प्रथम तो वे कभी बीमार ही नही होते, यदि कोई बीमार हो भी जाता है तो वह भोजन छोड देता है, जिससे वह जल्दी ही ठीक हो जाता है। इसके विपरीत पालतू पशु-पक्षियो को अपना भोजन स्वय चुनने की स्वतन्त्रता नही होती, न वे खुली वायु मे विचरण ही कर सकते है। जिस प्रकार भी और जहा भी उनके स्वामी उनको रखते हैं, उन्हे रहना पडता है। फलस्वरूप वे रोगी होते दुए देखे जाते है।

पिछले कुछ वर्षों से विटामिनो की बहुत चर्चा हो रही है। किसी भी रोगी को देख कर डाक्टर तुरन्त कह देते हैं कि इस रोगी को अमुक विटामिन की कमी है और फिर डाक्टर उस रोगी को कृत्रिम विटामिन की गोलिया सेवन कराते है। परन्तु आधुनिक अनुसन्धानो से पता चला है कि अधिक मात्रा मे कृत्रिम विटामिन सेवन करने से हानि की सम्भावना हो सकती है। हमे कृत्रिम विटामिन के बजाय विटामिनयुक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

डाक्टर गर्भवती महिलाओ को शक्तिवर्द्धक औषधिया और कृत्रिम विटामिन सेवन कराते है। परन्तु आधुनिक

शोधो से पता चला है कि गर्भ स्थिति के प्रारम्भ के तीन-चार महीनो मे शक्तिवर्द्धक औषधियां (Tonics) और कृत्रिम बिटामिन सेवन करने से गर्भस्थ शिशु के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है और उसके शरीर मे तरह-तरह की विकृतियाँ आ सकती हैं।

आज कल जुकाम-खासी हो जाने पर पेन बाम लगाने का चलन बहुत बढ़ गया है। अमेरिका के हार्वर्ड विश्व-विद्यालय के वैज्ञानिको ने पेन बाम लगाने से होने वाली प्रतिक्रिया पर शोध की है। इस सम्बन्ध मे डाक्टर गेरी हूवर ने बताया है, "चूहो पर पेन बाम का प्रयोग करने से पता चला है कि जिन चूहो के पेन बाम लगाया गया, उनकी नाक व फेफडो मे जुकाम, खासी के विषाणुओ को समाप्त करने की प्राकृतिक सामर्थ्य बहुत कम हो गयी थी। जब कि अन्य चूहो ने, जिनके पेम बाम नही लगाया गया था, ९५ प्रतिशत विषाणुओ को नाक व फेफडो तक पहुचते ही समाप्त कर दिया।" अभी मनुष्यो पर पेन बाम की प्रतिक्रिया का अध्ययन नही किया गया है। परन्तु यह सभी जानते हैं कि जो बालक व व्यक्ति बन्द मकानो मे रहते हैं और कपडो से दबे-ढके रहते हैं उनके जुकाम-खासी बहुत जल्दी हो जाता है और जो बालक व व्यक्ति खुले में रहते है और जो पूरे कपडे भी नही पहनते, उनके जुकाम-खासी बहुत देर से असर करते हैं।

आज कल टूथपेस्ट से दात साफ करने का रिवाज बढता जा रहा है। इस सम्बन्ध मे एक रोचक तथ्य की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हू। कुछ दिन हुए अमरीका मे डेनटिस्ट एसोसियेशन काग्रेस का जलसा हुआ था, जिसमे बहुत से ख्याति प्राप्त दातो के डाक्टर सम्मि-

लित हुए थे। जब उन डाक्टरो के दातो की जाच की गयी तो ९५ प्रतिशत डाक्टरो के दातो मे कोई न कोई रोग पाया गया। यह तो स्वाभाविक ही है कि ये सब डाक्टर टूथपेस्ट से ही अपने दात साफ करते होगे।

इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि जो व्यक्ति दांतुन से या किसी देशी दन्त मजन से अपने दात साफ करते हैं, उनके दात अधिकाश मे नीरोग और मजबूत पाये गये हैं।

आज कल की बनी हुई औषधियो पर ये कुछ निष्कर्ष है जो हमने उदाहरण स्वरूप दिये है। यह सभी जानते हैं कि आधुनिक शरीर-विज्ञान की इतनी उन्नति होने पर भी रोगियों की सख्या मे कोई कमी नही हो रही है, न जन-साधारण के स्वास्थ्य मे ही विशेष उन्नति हुई है। कुछ विशेष रोग अवश्य कम हुए है, परन्तु उनका स्थान नये-नये रोगो ने ले लिया है। इसका कारण यही है कि मनुष्य शरीर पर आधुनिक औषधियो की प्रतिक्रिया अनुकूल नही होती। वे एक रोग को कुछ समय के लिये अवश्य दबा देती हैं, (जड से नष्ट नही करती) परन्तु उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप कई नये-नये रोग शरीर मे पैदा हो जाते हैं। वास्तव मे आधुनिक औषधिया समय की कसौटी पर खरी नही उतर रही है।

तथ्य तो यह है कि प्रकृति ने स्वय ही हमको रोगो से लडने की शक्ति दी है। परन्तु हम अपनी अज्ञानता और आधुनिकता के मोह के कारण उस प्राकृतिक शक्ति को स्वय ही नष्ट कर रहे है। अधिक अच्छा यही होगा कि हमे दवाओ पर निर्भर न रह कर अधिकतर प्रकृति पर ही निर्भर रहना चाहिए।

अहिंसा व शाकाहार के सम्बन्ध में धर्म-शास्त्रों में लिखे हुए एवं महापुरुषों द्वारा कहे हुए विचार

"मैं मर जाना पसन्द करूगा, परन्तु मास कभी नहीं खाऊगा। पशुओ का मास खाना घोर नैतिक पतन है।"

"चाहे कुछ भी हो, धर्म हमे अण्डे, मछली, मास खाने की आज्ञा बिलकुल नही देता।"

"मैं मास नही खाऊगा, शराब नही पीऊगा, पर-स्त्री सग नही करूगा।"

—महात्मा गाधी

महात्मा बुद्ध स्वय लकावतार सूत्र में मास भक्षण परिवर्तो नामक आठवे अध्याय मे कहते है :—

"यह मास दुर्गन्धमय है। मलेच्छो द्वारा सेवित है। आर्यजनो द्वारा त्याज्य है। आर्यपुरुष मास और खून का आहार नही करते, क्योकि यह अभक्ष्य और घृणा से भरा है।"

"मास-भक्षण से साधुपना अथवा ब्राह्मणपना नष्ट हो जाता है। मासाहारी दूसरे के प्राणो को जबरदस्ती लेने के कारण डाकू हैं।"

"जो प्राणी लोभ के वशीभूत होकर दूसरे के प्राणो को हरते है अथवा मास की पैदावार बढाने मे धन का

योगदान करते हैं वे पापी हैं, दुष्ट हैं और रौरव नरक में जाकर महान् दु ख उठाते है।"

"मैं मानता हू, जो व्यक्ति दूसरो का मास खाता है वह सचमुच अपने बेटे का मास खाता है।"

"मास खाने मे कोढ जैसे अनेको भयकर रोग फूट पडते हैं। शरीर मे खतरनाक कीडे व जन्तु पैदा हो जाते हैं, अत मास भक्षण का त्याग करे।"

"हे महामते! मै यह आज्ञा कर चुका हू कि पूर्व ऋषि-प्रणीत भोजन मे चावल, जौ, गेहू, मूग, उडद, घी, तेल, दूध, शक्कर, खाण्ड, मिश्री आदि लेना ही योग्य है।"

"मैने किसी भी सूत्र मे मास को सेवन योग्य नही कहा है और न खाने की ही आज्ञा दी है, न उसे उत्तम भोजन कहा है।"

विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत मे लिखा है —

"हे अर्जुन! जो शुभ-फल प्राणियो पर दया करने से प्राप्त होता है, वह फल न तो वेदो से, न समस्त यज्ञो के करने से और न किसी तीर्थवन्दन अथवा स्नान से हो सकता है।"

—महाभारत, शान्ति पर्व, प्रथम पर्व

"ये लोग जो तरह-तरह के अमृत से भरे शाकाहारी उत्तम पदार्थों को छोडकर मास आदि घृणित पदार्थ खाते है वे सचमुच राक्षस की तरह दिखाई देते हैं।"

"जो दूसरो के मास से अपना मास बढाना चाहता है उस निर्दयी से बढकर कोई क्षुद्र व्यक्ति नही है।"

—महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय ११६

मनुस्मृति मे लिखा है —

"मारने की सलाह देने वाला, मरे प्राणियो के शरीर

को काटने वाला, मारने वाला, मोल लेने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला—ये सबके सब पापी और दुष्ट हैं।"

"जिसका मास मैं यहा खाता हू (मा) मुझको (स) वह भी दूसरे जन्म मे अवश्य खाएगा।"

—मनुस्मृति ५/५५

चाणक्यनीति मे लिखा है —

"मास खाने वाले, शराब पीने वाले, बिना पढे-लिखे, मूर्ख पुरुष, पशु के समान होते है। इनसे धरती माता सदैव दुखी रहती है।"

स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के विचार हैं—

"मास का प्रचार करने वाले सब राक्षस के समान हैं। वेदो मे कही भी मास खाने का उल्लेख नही है।"

—सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास १२

"शराबी और मासाहारी के हाथ का खाने मे भी शराब, मासादि के खाने-पीने का दोष लगता है।"

"जो लोग मास और शराब का सेवन करते हैं उनके शरीर, वीर्य आदि धातु दुर्गन्ध के कारण दूषित हो जाते हैं।"

—सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास १०

"हे मासाहारियो! जब कुछ काल पश्चात् पशु न मिलेगे तब तुम मनुष्यो का मास भी छोडोगे या नही।"

—स्वामी दयानन्दजी सरस्वती, गौ करुणानिधि

"गऊ आदि पशुओ का नाश होने मे राजा और प्रजा दोनो का नाश हो जाता है।"

—स्वामी दयानन्दजी सरस्वती

"गो रक्षा ही राष्ट्र रक्षा है"

"जो लोग अण्डे, मास खाते है, मैं उन दुष्टो का नाश करता हू।" —अथर्ववेद, काण्ड ८, वर्ग ६, मन्त्र १३

"हे अग्नि! मास खाने वालो को अपने मुंह मे रख।"

—ऋग्वेद १०-८७-२

"हे मित्र! जो पशु का मास खाते है उनके सिर फोड़ डालो।"

—ऋग्वेद १०-८७-१६

गुरु नानक देव के विचार है—

"सब राक्षस जैसे क्रूर पुरुषो को प्रभु का नाम जपाया। उनसे मास खाने की आदत छुडवाई। उन राक्षस पुरुषो ने जीवो को वध करने की आदत छोड़ दी। सच कहा है महात्माओ की सगति सुख देने वाली होती है।"

—नानक प्रकाश (पूर्वार्ध-अध्याय ५५ देथलूत राक्षस का प्रसग)

"हम तुम्हारे यहा भोजन कदापि नही कर सकते, क्योकि तुम सब जीवो को दुख देने वाले हो। सबसे पहले तुम मास खाना छोडो, जिस कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हो रहा है। दुख देने वाली तामसी वृत्ति को छोडकर सुखकारी प्रभु की भक्ति मे लग जाओ।"

—(नानक प्रकाश, पूर्वार्ध, अध्याय ५५)

"कपडे पर खून लगने से कपडा गन्दा हो जाता है। वही घृणित खून जब मनुष्य पीवेगा तब उसकी चित्त-वृत्तिया अवश्य ही दूषित हो जायेंगी।"

—गुरु नानक देव, बार मांझ, महल्ला-१

"जीवो पर दया करना सबसे बड़ा धर्म है। वह पुरुष उत्तम है जो दूसरों पर दया करता है।"

—माझ महल्ला-५ बारां माह (माघ माह)

"जो व्यक्ति मांस, मछली और शराब का सेवन करते हैं उनका धर्म, कर्म, जप, तप, सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।"

—गुरु ग्रन्थ साहब

"यदि जीवो का बध करने मे धर्म है तो हे भाई! पाप किसे कहेगे? यदि जीव-बध करने वाला अपने आपको मुनि समझे तो कसाई किसे कहेंगे।" —कबीर वाणी

ईसाई धर्म का उपदेश है—

"किसी प्राणी की हत्या मत करो।"

—प्रभु की पाचवी आज्ञा

"जब तुम्हारे पिता-प्रभु दयालु हैं तब उसकी सन्तान तुम भी दयावान बनो, अर्थात् किसी को मत सताओ।"

—(सेण्ट ल्यूकस, न्यू टैस्टामेंट ३६-६)

"देखो मैने पृथ्वी पर सब प्रकार की जडी-बूटिया तथा उनके बीज दिये हैं और साथ मे तरह-तरह के फलों से लदे पेड-पौधे भी दिये हैं तथा उनके बीज भी—उन सब शाकाहारी पदार्थों को खाओ, वे तुम्हारे लिए मास का काम देंगे।" —(Genesis—Chap 1-297)

"तुम मेरे पास सदैव एक पवित्र आत्मा होओगे यदि तुम किसी का भी मास न खाओ।"

पारसी धर्म मे भी पशु हिंसा का निषेध है—

"इस तरह जो कोई किसी पशु को मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नही करेगा। पैगम्बर एसफंदरमद ने कहा है—हे पवित्र मानव! परमात्मा की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल व मास से पवित्र रक्खा जाये।"

—(जरतुश्तनामाद्र—९५)

मुसलिम धर्म मे भी हिंसा का निषेध है—

The Koran, translated from Arabic by Rev James Rodwell, M A , London—1924-(607) S-22 By no means can this flesh reach into God neither their blood but piety on your part reaches there

किसी भी तरह का मास परमात्मा को नहीं पहुचता है न उनका रक्त। परन्तु जो कुछ दया तुम पालोगे वही वहा पहुचती है।

—कुरान शरीफ, पारा १७, सुराहज, रुक ५, आयत ३८

(24) S 80 Let man look at his food It was we who rained down the copious rains,

.and caused the upgrowth of the grain and grapes and healing herbs and the olive and the palm and enclosed gardens thick with trees, fruits and herbage, for the service of yourselves and your cattle (20—40)

मानव को भोजन पर ध्यान देना चाहिए। हमने बहुत पानी बरसाया, अनाज, अगूर, औषधिया, खजूर आदि उगवाये, उनके चारो तरफ वृक्षो से, फलो से व वनस्पतियो से घने भरे हुए बाग लगवाये, तुम्हारी और तुम्हारे पशुओ की सेवा के लिये।

मनुष्य जन्म की सार्थकता

हम अनादि काल से विभिन्न योनियो मे शरीर धारण करते हुए सुख और दुख भोग रहे हैं। इन सुख व दुख भोगने के लिये हमारे द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कार्य ही उत्तरदायी है। ये अच्छे व बुरे कार्य हम अपने अनादिकालीन अज्ञान और हिसा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि की भावनाओ के कारण ही करते रहते है। यदि हमको सुख व दुख भोगने से छुटकारा पाकर, अनन्त और सच्चा सुख प्राप्त करना है तो हमको अपना अज्ञान तथा इन क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओ को छोडना पडेगा। मनुष्य योनि के अतिरिक्त पशु-पक्षियो की योनियो मे न तो हम मे इतनी शक्ति होती है और न इतना ज्ञान व विवेक, कि हम अपना अच्छा व बुरा सोच व समझ सके। ससार मे लाखो योनियो मे केवल मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है जब हम अपना भविष्य सुधारने और सच्चा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस मनुष्य जन्म मे भी अपनी भलाई की बात सुनने व जानने का अवसर कितने मनुष्यो को मिलता है ? यदि भलाई की बात सुनने का अवसर मिल भी जाये, तो उस बात को सुनने, समझने तथा उस पर आचरण करने का प्रयत्न कितने व्यक्ति करते हैं ? फिर इन प्रयत्न करने वालों मे भी कितने व्यक्तियो को इतनी सुविधा व साधन उपलब्ध

होते हैं जो अपने मन, वाणी व कार्यरूप से उस बात पर आचरण कर लेते हैं। इतनी सब अनुकूलताएँ उपलब्ध होने पर भी यदि हम अपना भविष्य नही सुधारते और मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर नही होते तो हमसे अधिक अभागा और मूर्ख कौन होगा ? पैदा होना, खाते-पीते रहना, इन्द्रियो के विषय सेवन करते रहना और अन्तत मर जाना—क्या यही मनुष्य जीवन की उपलब्धि है ? ये सब कार्य तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। फिर मनुष्य मे और पशु-पक्षी मे क्या अन्तर रहा ? वास्तव मे यह मनुष्य जन्म तो उस जकशन अथवा चौराहे के समान है, जहा से हम जिधर भी चाहे, जा सकते हैं। मनुष्य जन्म प्राप्त कर हम इस ससार तथा अपनी आत्मा का सच्चा स्वरूप जानकर हिंसा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओ का त्याग कर, सयम व तप के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट करके, अपनी आत्मा के कल्याण की ओर—मुक्ति की ओर—भी अग्रसर हो सकते हैं और इसके विपरीत अपने अज्ञान और अपनी राग-द्वेष की भावनाओ के कारण चिरकाल के लिये पशु-पक्षी आदि की नीच योनियो मे भी गिर सकते है। एक बार इस मनुष्य योनि को व्यर्थ गवा देने पर न जाने कितने काल के पश्चात् हमे यह मनुष्य जन्म फिर से प्राप्त हो ?

एक बात और, हमे इस भ्रम मे नही रहना चाहिए कि अभी तो हम स्वस्थ व जवान है, मृत्यु के आने मे अभी बहुत समय है, अत बुढापा आने पर धर्म-कर्म की बातें सोच लेंगे। इसके विपरीत हम यह निश्चित समझ लें कि मृत्यु का कोई समय नियत नही होता। वह बुढापे मे भी आ सकती है और जवानी मे भी। अत. हमको निश्चिन्त

होकर नही बैठना चाहिए, अपितु हर समय मृत्यु के स्वागत के लिये तैयार रहना चाहिए। मृत्यु के आने के समय हमे यह पश्चाताप नही हो कि कुछ समय और मिल जाता तो हम अपने आत्म-कल्याण के लिये कुछ कर लेते। अत मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है :

—कि हम सदैव शुद्ध, सात्विक व शाकाहारी भोजन ही सेवन करे, जिससे हमारा शरीर, मन व बुद्धि सदैव स्वस्थ बने रहें,

—कि हम किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट देने का विचार भी अपने मन मे न लावें,

—कि हम सदैव परोपकार मे लगे रहे,

—कि हम इस ससार, अपने शरीर व आत्मा की वास्तविकता को जानकर सदैव अपनी आत्मा के कल्याण मे तत्पर रहे।

जैन प्रतीक

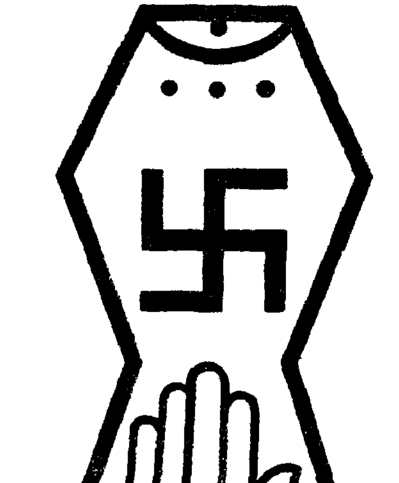

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

यह चिह्न जैन प्रतीक है, जिसको समस्त जैन समाज ने एक मत से स्वीकार किया है।

सबसे बाहर जैन मान्यता के अनुसार त्रिलोक का आकार दिया गया है। स्वस्तिक का चिह्न चतुर्गति का प्रतीक है। स्वस्तिक के ऊपर तीन बिन्दु त्रिरत्न के द्योतक है, जो सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को दर्शाते हैं। त्रिरत्न के ऊपर अर्द्ध-चन्द्र, सिद्ध-शिला को लक्षित करता है। अर्द्ध-चन्द्र के ऊपर एक बिन्दु है जो मुक्त जीव का द्योतक है। स्वस्तिक के नीचे जो हाथ दिया गया है वह अभय का बोध देता है तथा हाथ के बीच मे जो चक्र दिया गया है वह अहिंसा का धर्म-चक्र है। चक्र के बीच मे अहिसा लिखा हुआ है। त्रिलोक के आकार मे प्रतीक का स्वरूप यह बोध देता है कि चतुर्गति मे भ्रमण करती हुई आत्मा अहिसा धर्म को अपनाकर सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान एव सम्यक्-चारित्र के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकती है।

प्रतीक के नीचे जो सस्कृत वाक्य "**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**" दिया गया है—इसका तात्पर्य है, "जीवो का परस्पर उपकार"।

प्रतीक मे जैन दर्शन का यह सूत्र युग-युग से सम्पूर्ण जगत् को शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

इस प्रतीक से समूचे जैन शासन की सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है।

सचमुच मे यह प्रतीक हमे ससार से ऊपर उठकर मोक्ष के प्रति प्रयत्नशील होने का पाठ पढ़ाता है।

मेरी भावना

(लेखक—स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर')

(सच्चे देव का लक्षण और उनकी भक्ति मे लीन रहने की भावना)

जिनने राग द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया,
सब जीवो को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उनको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उन्ही मे लीन रहो ॥१॥

(सच्चे साधु का लक्षण और उनका सत्सग करते रहने की भावना)

विषयो की आशा नही जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज पर के हित साधन मे जो, निश दिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते है ॥२॥
रहे सदा सत्सग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्य्या मे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।

(पाचो पाप व अन्य दुष्प्रवृत्तियों को त्यागने की भावना)

नही सताऊ किसी जीव को, झूठ कभी नही कहा करू,
परधन-वनिता पर न लुभाऊं, सतोषामृत पिया करू ॥३॥
अहकार का भाव न रक्खू, नही किसी पर क्रोध करू,
देख दूसरो की बढती को, कभी न ईर्षा भाव धरूं।

(परोपकार करने की भावना)

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहा तक इस जीवन मे, औरों का उपकार करूं ॥४॥

(समस्त जीवो से मैत्री रखने की भावना)

मैत्री भाव जगत मे मेरा, सब जीवो से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवो पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे।
दुर्जन, क्रूर, कुमार्ग-रतो पर, क्षोभ नही मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥

(गुणी जनो की सेवा करने और उनके गुण ग्रहण करने की भावना)

गुणी जनो को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड आवे,
बने जहा तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊ नही कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे ॥६॥

(न्याय-मार्ग पर दृढ़ रहने की भावना)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
अनेक वर्षों तक जीऊ, या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे ॥७॥

(समता भाव रखने तथा निडर व सहनशील बनने की भावना)

होकर सुख मे मगन न फूलें, दुख में कभी न घबरावें,
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावें।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥

(समस्त जीवों के सुखी व धर्मनिष्ठ होने की भावना)

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
बैर, पाप, अभिमान छोडकर, नित्य नये मगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्मफल सब पावे ॥९॥
ईत भीत व्यापे नही जग मे, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग, मरी, दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिसा धर्म जगत मे, फैल सर्व हित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नही, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दु ख सकट सहा करे ॥११॥

आत्म निवेदन

आपने इस पुस्तक का अवलोकन किया। यदि आपको यह पुस्तक उपयोगी लगी हो, तो कृपा करके आप अपने मित्रो व सम्बन्धियो से इसे पढने का अनुरोध अवश्य करे। इस पुस्तक को अलमारी मे बन्द करके न रखें, अपितु अन्य सज्जनो को पढने के लिये दे तथा अपने नगर के मन्दिरजी व वाचनालय मे रख दे जिससे इस पुस्तक का अधिक से अधिक उपयोग हो सके। यदि और पुस्तको की आवश्यकता हो तो हमे पत्र लिख दे, हम आपको और पुस्तकें नि शुल्क भेज देंगे।

यदि आप इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी तथा रोचक बनाने के लिये कोई सुझाव दे सकें तो आपके सुझावो का सहर्ष स्वागत है। अगले सस्करण में उन सुझावो का समुचित उपयोग करने का प्रयत्न करेंगे।

यदि किन्ही महानुभाव को पुस्तक के किसी भी विषय के सम्बन्ध मे कोई शका हो, तो हमे अपनी शंका अवश्य लिखे, हम उनकी शकाओ का लेखक द्वारा समाधान कराने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

सन १९७३ मे हमने **'सच्चे सुख का मार्ग'** नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इस पुस्तक मे आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त, सच्चा सुख तथा उसके प्राप्त करने के मार्ग पर तर्क सम्मत एव वैज्ञानिक आधार पर विवेचन

किया गया है। इस पुस्तक की जैन व अजैन पत्रिकाओ तथा पाठको द्वारा बहुत सराहना होने, अतः पर्याप्त मांग होने के कारण, इसका पहला सस्करण बहुत जल्द समाप्त हो गया। अब हमारा इस पुस्तक का दूसरा सस्करण प्रकाशित करने का विचार है। जिन पाठको की इस विषय में रुचि हो वे हमे एक पोस्टकार्ड पर साफ व सुन्दर अक्षरो में, (हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषा मे) अपना नाम व पूरा पता (पूरा नाम, मकान न०, मोहल्ले का नाम, नगर का नाम (नगर के नाम के नीचे लाइन लगा दे), पिन कोड न०, डाकखाने का नाम, जिले का नाम, प्रदेश का नाम) लिखकर भेज दे। प्रकाशित होने पर हम उनको यह पुस्तक निःशुल्क भेज देंगे।

प्रकाशक

(प्रेम रेडियो एण्ड इलेक्ट्रिक मार्ट)
महालक्ष्मी मार्केट, भगीरथ पैलेस,
चादनी चौक, दिल्ली-६